समन्वय

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।

अष्टम वर्ष

(सौर माघ सं० १९८५—सौर पौष सं० १९८६)

ई० सन् १९२९ ।

—※—

समन्वय कार्य्यालय ।

१८२ ए, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता ।

वार्षिक मूल्य ३)] [प्रति संख्या ।-)

आठवाँ वर्ष की विषय-सूची।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
—गीता

वर्ष ८] सौर माघ, संवत् १९८५ [अङ्क १

नव वर्ष

उस करुणामय की असीम कृपा से समन्वय अपने जीवन के सात वर्ष पूरे कर इस अंक से आठवें वर्ष में नई आशाओं और नई उमंगों के साथ पदार्पण कर रहा है। इस समय उस परम पिता परमेश्वर को प्रणाम करना और उसके जीवों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना हमारा आवश्यक कर्तव्य है। हमारी प्रार्थना है कि उस विश्व-नियामक के नियन्त्रण में मानव समाज परस्पर सहानुभूति और प्रेम प्रकाशित करता हुआ, सत्य और सेवा के मार्ग पर अग्रसर होता रहे। साथ ही इस अवसर पर समन्वय के दयालु पाठकों को भी धन्यवाद देना हमारा परम कर्तव्य है, जिनकी सहायता और सहानुभूति से वह अपने जीवन के सात वर्ष व्यतीत कर सका और जिनके सहारे उसे अपने मार्ग पर अग्रसर होने की आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास भी है।

अपने इस छोटे से जीवन काल में समन्वय ने अपने कृपालु पाठकों के सामने उस महान् भारतीय आदर्श को रखने में कोई बात उठा नहीं रखी, जिस आदर्श को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये भारतीयों ने कई शताब्दियों से निरन्तर प्रयत्न किया है। वर्तमान भारत दो परस्पर विरोधिनी सभ्यताओं के बीच चल रहा है। एक ओर उसकी प्राचीन

३—रोगियों के साथ उनके सम्बन्धी भी आते हैं, इन्हें ठहरने के लिये एक अतिथिशाला की आवश्यकता है। इसके निर्माण में कोई छः हजार रुपये लगने की सम्भावना है।

४—दमा के छः रोगियों को रखने के लिये एक अलग कमरे की आवश्यकता है। इस कमरे को बनाने में दो हजार रुपये लगेंगे।

५—आश्रम की रक्षा के लिये एक दीवाल तथा स्थानीय लोगों के स्नान करने के लिये जमुना तट पर एक घाट बनवा देना भी किसी प्रकार कम आवश्यक नहीं है, इसके निर्माण में भी कोई दस हजार का खर्च है।

आश्रम की मासिक आय कुल तीन सौ ही है। जिससे इतना अधिक दैनिक खर्चा चलना ही भलीभांति सम्भव नहीं होता। काम को स्थायी बनाने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि आश्रम का एक अच्छा स्थायी कोष हो।

जो सज्जन अपने किसी प्रिय सम्बन्धी या मित्र की स्मृति को चिरस्थायी करना चाहते हों, वे एक हजार रुपये की लागत का एक कमरा बना सकते हैं अथवा पूर्वोक्त आवश्यकताओं में से किसी एक की पूर्ति कर सेवा आश्रम के अभाव को दूर करने के साथ ही अक्षय कीर्ति और पुण्य के भागी बन सकते हैं।

हमारी एकान्त अभिलाषा है कि उदार हृदय धनी मानी सज्जन आश्रम को आर्थिक सहायता देकर उसे कार्य क्षेत्र में अग्रसर होने के लिये उत्साहित करें।

सहायता की रकम चाहे वह कितनी छोटी क्यों न हो, निम्न-लिखित पते पर सधन्यवाद स्वीकृत होगी :—

१—अध्यक्ष रामकृष्ण मिशन, पोष्ट बेलूड़मठ ; जिला हवड़ा।

२—अवैतनिक मंत्री, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ —गीता।

वर्ष ८] सौर आश्विन, सम्वत् १९८६ [अङ्क ६

श्रीरामकृष्णवचनामृत।

(६)

सन्ध्या हो गई। बलराम के बैठकखाने और बरामदे में चिराग जल गये। श्रीरामकृष्ण संसार की माता को प्रणाम करके अंगुलियों में बीज-मंत्र का जप कर मधुर स्वर से नाम ले रहे हैं। भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं। वह मधुर नाम सुन रहे हैं। गिरीश, मास्टर, बलराम, त्रैलोक्य, और दूसरे बहुत से भक्त अब भी बैठे हुए हैं। "केशव चरित" ग्रन्थमें संसार के लिये श्रीरामकृष्ण के मत-परिवर्तन की जो बात लिखी है, त्रैलोक्य के सामने वह प्रसंग उठाने के लिये भक्तों ने निश्चय किया। गिरीश ने श्रीगणेश किया।

वे त्रैलोक्य से कह रहे हैं,—"आपने जो यह लिखा है कि संसार के सम्बन्ध में इनका (श्रीरामकृष्ण का) मत बदल गया है, वास्तव में बात वैसी नहीं, इनका मत परिवर्तित नहीं हुआ है।"

श्रीरामकृष्ण (त्रैलोक्य और दूसरे भक्तों से)—ईश्वर का आनन्द मिलने पर फिर संसार नहीं सुहाता। ईश्वर का आनन्द मिल गया तो संसार अलोना जान पड़ता है। शाल के मिलने पर बनात नहीं अच्छी लगती।

त्रैलोक्य। जो लोग सांसारिक हैं, मैंने उनकी बात लिखी है। जो लोग त्यागी हैं, मैं उनकी बात नहीं कहता।

श्रीरामकृष्ण। ये सब तुमलोगों की कैसी बातें हैं ? जो लोग 'संसार में धर्म' की रट लगाते हैं, वे लोग एक बार अगर ईश्वर का आनन्द पा जायं, तो उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता। कामों के लिये जो दृढ़ता होती है, वह भी घट जाती है। क्रमशः आनन्द जितना बढ़ता जाता है, उतना वे काम करने से अशक्त होते जाते हैं,—केवल उस आनन्द की ही खोज में रहते हैं। कहां ईश्वरानन्द और कहां विषयानन्द और रमणानन्द! एकबार ईश्वर के आनन्द का स्वाद पा जाने पर फिर मनुष्य उसी आनन्द की खोज के लिये तुल जाता है, चाहे संसार रहे चाहे चला जाय।

"प्यास के मारे चातक की छाती फटी जाती है, सातों सागर, सारी नदियां, कुल तालाव पानी से भरे रहते हैं, फिर भी वह उनका जल नहीं पीता। स्वाती की बूंदों के लिये चोंच फैलाये रहता है। स्वाती की बूंदों को छोड़ उसके लिये और सब पानी धूल है।

"कहते हैं, दोनों ओर बचाकर चलेंगे। दुअन्नी भर शराब पीकर आदमी दोनों तरफ की रक्षा चाहे करलें, परन्तु कसकर शराब पीले तो कैसे रक्षा हो सकेगी ?"

ईश्वर का आनन्द पा जानेपर फिर कुछ और नहीं अच्छा लगता। तब कामिनी और कांचन की बात हृदय में चोट कर जाती है। (श्रीरामकृष्ण कीर्तन के स्वर में कह रहे हैं)—"दूसरे आदमियों की और और बातें तो अब अच्छी ही नहीं लगतीं।" तब ईश्वर के लिये मनुष्य पागल होता है, रुपया पैसा कुछ नहीं अच्छा लगता।

त्रैलोक्य। संसार में रहना है तो धन का भी तो संचय चाहिये। दान-ध्यान आदि संसार में लगे ही रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण। क्या! पहले धन का संचय करके तब ईश्वर! और दान-ध्यान-दया भी कितनी! अपनी लड़की के विवाह में तो हजारों रुपयों का खर्च—और पड़ोसी, भूखों मरता है, उसे मुट्ठी भर अन्न देते कलेजा चिर जाता है! संसारी मनुष्य दान भी बड़े हिसाब से करते हैं। लोग खाने को नहीं पाते—तो क्या हुआ, साले मरें या बचें,—मैं और मेरे घरवाले सब अच्छे रहें बस हो गया! सब जीवों पर दया, उनका जबानी जमाखर्च है।

त्रैलोक्य। संसार में अच्छे आदमी भी तो हैं,—पुण्डरीक विद्यानिधि चैतन्यदेव के शिष्य थे। वे संसार में ही तो थे।

श्रीरामकृष्ण। उसके गले तक शराब आ गई थी। अगर थोड़ी सी और पी ली होती तो फिर संसार में नहीं रह सकता था।

त्रैलोक्य चुप हो गये। मास्टर गिरीश से अकेले में कह रहे हैं:—तो इन्होंने जो कुछ लिखा है, वह ठीक नहीं है।

गिरीश। तो आपने जो कुछ लिखा है, इस सम्बन्ध में, वह ठीक नहीं है! क्यों ?

त्रैलोक्य। नहीं क्यों ? क्या ये यह नहीं मानते कि संसार में धर्म होता है ?

श्रीरामकृष्ण। होता है, परन्तु ज्ञान लाभ के पश्चात् संसार में रहना चाहिये,—ईश्वर को प्राप्त कर रहना चाहिये। तब 'कलंक' के समुद्र में तैरते रहने पर भी कलंक देह में नहीं छू जाता। कीच के भीतर रहनेवाली मछली की तरह रह सकता है। ईश्वरलाभ के बाद जो संसार है, वह विद्या का संसार है। उसमें कामिनी और कांचन नहीं हैं। है केवल भक्ति, भक्त और भगवान। मेरे भी स्त्री है,—घर में लोटा-थाली भी है,— धूरू और लुच्चू को भोजन भी दे दिया जाता है, और फिर जब 'हाबी की मां' और ये लोग आते हैं, तब इन लोगों के लिये भी सोचता हूं।

(७)

एक भक्त (त्रैलोक्य से)। आपकी पुस्तक में मैंने देखा, आप अवतार नहीं मानते। यह चैतन्यदेव के प्रसंग में पाया।

त्रैलोक्य। उन्होंने स्वयं प्रतिवाद किया है। पुरी में जब अद्वैत और उनके दूसरे भक्त उन्हें ही भगवान्‌ कहकर गाने लगे, तब गाना सुनकर चैतन्यदेव ने अपने घर के दरवाजे बन्द कर लिये थे। ईश्वर के ऐश्वर्य की इति नहीं है। ये जैसा कहते हैं, भक्त भगवान्‌ का बैठकखाना है, बात यही जंचती है। बैठकखाना खूब सजाया हुआ है, तो क्या उसके अतिरिक्त उनके और कोई ऐश्वर्य नहीं है?

गिरीश। ये कहते हैं, प्रेम ही ईश्वर का सारांश है। जिस आदमी के भीतर से प्रेम का आविर्भाव होता है, हमें उसीकी जरूरत है। ये कहते हैं, गौ का दूध उसके स्तनों से आता है। अतएव हमें स्तनोंकी जरूरत है। गौ के दूसरे अंगों की आवश्यकता नहीं,—उसके पैरों या सींगों की जरूरत नहीं।

त्रैलोक्य। उनका प्रेम-दुग्ध अनन्त मार्गों से होकर निकलता है,—उनकी अनन्त शक्ति है।

गिरीश। उस प्रेम के पास दूसरी और कौन सी शक्ति ठहरती है?

त्रैलोक्य। उनके इच्छा करने पर जो शक्ति हो—सब ईश्वर की ही शक्तियां हैं।

गिरीश। और सब शक्ति तो उनकी हैं, परन्तु अविद्या शक्ति?

त्रैलोक्य। अविद्या भी कोई वस्तु है? वह तो अभावमात्र है। जैसे अंधेरे में उजाले का अभाव। हम में उनका प्रेम जरूर है, उनके बिन्दु में हमारा सिन्धु है। परन्तु यही अन्त है, अगर यह कहा जाय, तब तो उनकी सीमा कर दी गई।

श्रीरामकृष्ण (त्रैलोक्य और दूसरे भक्तों से)। हां, हां, यह ठीक है। परन्तु थोड़ी सी शराब के पीने पर जब कि हमें काफी नशा आ जाता है, तो शराबवाले की दूकान में कितनी शराब है, इसके जानने की हमें क्या जरूरत है? अनन्त शक्ति की खबर से हमें क्या काम?

गिरीश (त्रैलोक्य से)। आप अवतार मानते हैं?

त्रैलोक्य। भक्त में ही भगवान् अवतीर्ण होते हैं, अनन्त शक्ति का आविर्भाव नहीं होता,—न हो सकता है। ऐसा किसी भी मनुष्य में नहीं हो सकता।

गिरीश। बच्चों को 'ब्रह्मगोपाल' कहकर तो पूजा की जा सकती है, महापुरुष को क्या ईश्वर कहकर पूजा नहीं की जा सकती?

श्रीरामकृष्ण (त्रैलोक्य से)। अनन्त को क्यों घुसेड़ना चाहते हो? तुम्हें छूने के लिये क्या तुम्हारे कुल शरीर को छूना होगा? अगर गंगा स्नान करना है तो क्या हरिद्वार से गंगासागर तक गंगा को छू जाना चाहिये? 'मैं' मरा कि जंजाल दूर हुआ। जबतक 'मैं' है, तभी तक भेद-बुद्धि रहती है। 'मैं' के जानेपर क्या रहता है, यह कोई नहीं कह सकता,—मुंह से यह बात नहीं कही जा सकती। जो कुछ है, बस वही है। तब, कुछ प्रकाश यहां हुआ है और क्या-कुछ वहां, यह कुछ मुंह से नहीं कहा जाता। सच्चिदानन्द सागर है। उसके भीतर 'मैं' घट है। जबतक घट है तबतक पानी के दो भाग हो रहे हैं। एक भाग घट के भीतर है, एक बाहर। घट फूट जानेपर एक ही पानी है! यह भी नहीं कहा जा सकता,—कहे कौन?

विचार हो जाने पर श्रीरामकृष्ण त्रैलोक्य के साथ मधुर शब्दों में वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण। तुम तो आनन्द में हो?

त्रैलोक्य। कहां? यहां से उठा नहीं कि फिर ज्योंका त्यों। इस समय अच्छी ईश्वर की उद्दीपना हो रही है।

श्रीरामकृष्ण। जूते पहने रहो तो कांटों के वन में कोई भय नहीं

रहता। 'ईश्वर ही सत्य है और सब अनित्य', इस बोध के रहने पर कामिनी और कांचन के लिये फिर कोई भय नहीं रह जाता।

त्रैलोक्य को जलपान कराने के लिये बलराम उन्हें दूसरे कमरे में ले गये। श्रीरामकृष्ण, त्रैलोक्य और उनके मत के लोगों की अवस्था भक्तों से कह रहे हैं। रात के ६ बजे होंगे।

श्रीरामकृष्ण (गिरीश, मणि और दूसरे भक्तों से)। ये कैसे हैं, जानते हो ? कुएँ के एक मेढ़क ने पृथ्वी कितनी बड़ी है, यह नहीं देखा, वह बस कुआँ पहचानता है। इसीलिये वह यह विश्वास हरगिज नहीं करता कि एक पृथ्वी भी है। ईश्वर के आनन्द का पता नहीं मिला, इसीलिये संसार, संसार रट रहा है।

"(गिरीश से) उनके साथ क्यों बकते हो ? ये दोनों में हैं। ईश्वर के आनन्द का स्वाद जब तक नहीं मिलता, तब तक उनकी बातें समझ में नहीं आतीं। पांच साल के लड़के को क्या कोई रमणसुख समझा सकता है ? विषयी लोग जो ईश्वर-ईश्वर रटते हैं, वह सुनी बात है। जैसे घर की बड़ी दीदी और चाची को आपस में लड़ाई करते हुए देख कर बच्चे उनसे सीखते हैं—'मेरे लिये भगवान हैं'—'तुझे भगवान की कसम है'।

"खैर। उनका दोष कुछ नहीं है। क्या सब लोग कभी उस अखण्ड सच्चिदानन्द को प्राप्त कर सकते हैं ? रामचन्द्र को सिर्फ बारह ऋषियों ने समझा था, सब उन्हें नहीं समझ सके। कोई साधारण मनुष्य सोचते हैं—कोई साधु समझते हैं,—दो ही चार आदमी उन्हें अवतार जान सकते हैं।

"जिसके पास जितनी पूंजी है, उतना ही दाम वह एक चीज के लिये खर्च करता है। एक बाबू ने अपने नौकर से कहा, यह हीरा तू बाजार में ले जा, लौटकर मुझे बतलाना, कि कौन कितनी कीमत देता है। पहले बैंगनवाले के पास जाना। नौकर पहले बैंगनवाला के

पास गया। बैंगनवाले ने उसे उलट-पुलट कर देखा और कहा, भाई ! इसके बदले नौ सेर बैंगन मैं दे सकता हूं। नौकर ने कहा, भाई जरा बढ़ो, भला दस सेर तो दो। उसने कहा, मैं बाजार-दर से ज्यादा कह चुका, इतने से पट जाय तो दे जाओ। नौकर तब हंसते हुए हीरा लौटा कर बाबू से कहा, बैंगनवाला नौ सेर से एक भी बैंगन अधिक नहीं देना चाहता। उसने कहा, मैं बजार-दर से ज्यादा कह चुका।

"बाबू ने हंसकर कहा, अच्छा अबके कपड़ेवाला के पास ले जा, वह बैंगनों में पड़ा रहता है, वह और कहां तक समझेगा। कपड़ेवाले की पूंजी कुछ ज्यादा है, देखें जरा—वह क्या कहता है। नौकर कपड़ेवाले के पास गया और कहा, क्योंजी, लोगे ? क्या दे सकोगे ? कपड़ेवाले ने कहा, हां, चीज तो अच्छी है, इससे स्त्रियों का कोई जेवर बन जायगा। भाई, मैं नौ सौ रुपया दे सकता हूं। नौकर ने कहा, भाई, कुछ और चढ़ो, तो छोड़ भी दें। अच्छा हजार तो पूरा कर दो। कपड़ेवाले ने कहा, अब कुछ न कहो, मैंने बाजार-दर से ज्यादा कह दिया है। नौ सौ रुपयों से अधिक एक भी रुपया मैं न दूंगा। नौकर हीरा लौट कर मालिक के पास हंसते हुए पहुंचा और कहा, कपड़ेवाला कहता है—"नौ सौ से एक कौड़ी भी ज्यादा न दूंगा। उसने यह भी कहा कि मैंने बाजार-दर से कीमत ज्यादा कह दी।" तब उसके मालिक ने हंसते हुए कहा, अब जौहरी के पास जाओ, देखें, वह क्या कहता है। नौकर जौहरी के पास गया। जौहरी ने जरा देख कर ही कहा—एक लाख दूंगा।

"संसार में इन लोगों का धर्म-धर्म चिल्लाना उसी तरह है, जैसे किसी मकान के सब दरवाजे तो बन्द हों और छत के छेद से जरा सी रोशनी आ रही हो। सिर पर छत के रहने पर क्या कोई सूर्य

को देख सकता है? जरासा उजाला आया भी तो क्या हुआ? कामिनी-कांचन छत है। छत को गिराये बिना उस दशा में सूर्य को देखना मुश्किल है। संसारी आदमी मानों घरों में कैद हैं।

"अवतार आदि ईश्वर-कोटि हैं। वे खुली जगहों में घूम रहे हैं। वे कभी संसार में नहीं बंधते,—पकड़ में नहीं आते। उनका 'मैं' संसारियों का-सा मद्दा 'मैं' नहीं है। संसारियों का अहंकार,—संसारियों का 'मैं' उसी तरह है, जैसे चारों ओर से चार दीवार और ऊपर छत हो। बाहर की कोई वस्तु नहीं नजर आती हो। अवतार पुरुषों का 'मैं' बारीक 'मैं' है। इस 'मैं' के भीतर से सदा ही ईश्वर दिखलाई देते हैं। जैसे एक आदमी चार दीवार के एक किनारे पर खड़ा हुआ है, और दीवार के दोनों ओर खुला हुआ अछोर मैदान पड़ा हुआ है, उस चार दीवार में एक जगह एक छेद है, जिससे दोनों ओर साफ नजर दौड़ जाती है। छेद अगर कुछ बड़ा हुआ तो इधर-उधर आना-जाना भी हो सकता है। अवतार पुरुषों का 'मैं' यही छेदवाली चार दीवार है। चार दीवार के इधर रहने पर भी अछोर मैदान दिखलाई देता है—इसका अर्थ यह है कि शरीर धारण करने पर भी वे सदा योग में रहते हैं। फिर अगर इच्छा हुई तो बड़े छेद के उधर जा कर समाधि मग्न भी हो जाते हैं और छेद बड़ा रहा तो आना जाना जारी भी रख सकते हैं। समाधि मग्न होने पर भी उतर कर आ सकते हैं।"

भक्त-मण्डली विस्मय और चाव के साथ चुपचाप अवतार-तत्त्व सुन रही है।

इक्कीसवां परिच्छेद।

शुक्रवार, वैशाख की शुक्ला दशमी तदनुसार २४ अप्रैल, १८८५ है। श्रीरामकृष्ण आज कलकत्ता आये हुए हैं। मास्टर ने दिन एक बजे के लगभग बलराम के बैठकखाने में जाकर देखा, श्रीरामकृष्ण निद्रित हैं। दो एक भक्त पास विश्राम कर रहे हैं।

मास्टर एक पङ्खा लेकर धीरे धीरे हवा करने लगे, श्रीरामकृष्ण की नींद छूटी। ढीली-देह वे उठ कर बैठ गये। मास्टर ने भूमिष्ठ होकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी पदधूलि ली।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से, सस्नेह)। अच्छे हो? अजी, न जाने क्यों, मेरे गले की गिल्टी फूल गई है, पिछली रात से दर्द होता है। क्यों जी, यह कैसे अच्छी हो? (चिन्तित होकर) आम की खट्टी तरकारी बनी थी, और भी कई चीजें बनी थीं, थोड़ी थोड़ी सी सब चीजें मैंने खाई। (मास्टर से) तुम्हारी बीबी कैसी है? उस दिन बहुत कमजोर देखा। कोई ठंडी चीज थोड़ी थोड़ी सी दिया करो।

मास्टर। जी, कच्चा नारियल दिया करूं!

श्रीरामकृष्ण। हां, मिश्री का शरबत पिलाना अच्छा है।

मास्टर। मैं रविवार से घर चला गया।

श्रीरामकृष्ण। अच्छा किया। घर रहने से तुम्हें सुभीता है। बाप भी है, तुम्हें संसार का काम ज्यादा न देखना होगा।

बातचीत करते हुए श्रीरामकृष्ण का मुंह सूखने लगा। तब बालक की तरह पूछने लगे,—(मास्टर से) मेरा मुंह सूख रहा है, क्या सभी का मुंह सूख रहा है?

मास्टर। योगीन्द्र बाबू, क्या आप का भी मुंह सूख रहा है?

योगीन्द्र। नहीं, इन्हें गरमी लगी होगी।

एंड़ेदा के योगीन्द्र श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग एक त्यागी भक्त हैं। श्रीरामकृष्ण शिथिल भाव से बैठे हुए हैं। भक्तों में कोई कोई हँस रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण। मैं जैसे दूध पिलाने के लिये बैठा हूं (सब हँसते हैं)। अच्छा मुंह सूख रहा है, मैं नासपाती या जामरूल खाऊं?

बाबूराम । वही ठीक है । मैं अमरूद ले आऊं ।

श्रीरामकृष्ण । धूप में अब न जा ।

मास्टर पंखा झल रहे थे ।

श्रीरामकृष्ण तुम बड़ी देर से तो—

मास्टर । जी मुझे कोई कष्ट नहीं हो रहा ।

श्रीरामकृष्ण । (सस्नेह) । नहीं हो रहा ?

मास्टर पास ही के एक स्कूल में पढ़ाते हैं। वे एक बजे पढ़ाने से जरा देर के लिये अवसर लेकर आये हैं। अब स्कूल में फिर जाने के लिये उठे। श्रीरामकृष्ण की पाद-वन्दना की।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)। इसी समय आओगे ?

एक भक्त। स्कूल की छुट्टी अभी नहीं हुई। ये बीच में ही चले आये थे।

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)। जैसे गृहिणी,—सात आठ बच्चे पैदा कर चुकी—संसार में रात दिन काम पड़ता है,—परन्तु उसी समय के भीतर एक एक बार आकर पतिकी सेवा कर जाती है।

(सब हँसते हैं)।

(२)

चार बज जाने पर स्कूल की छुट्टी हो गई। बलराम बाबू के बाहरवाले कमरे में मास्टर ने आकर देखा, श्रीरामकृष्ण प्रसन्नता पूर्वक बैठे हुए हैं। हाल पाकर भक्तमण्डली क्रमशः एकत्र हो रही है। छोटे नरेन्द्र और राम आ गये हैं। नरेन्द्र आये हैं। मास्टरने प्रणाम कर आसन ग्रहण किया। कमरे के भीतर से बलराम ने थाली में मोहन-भोग भेज दिया है, इसलिये कि श्रीरामकृष्ण के गले में गिल्टी पड़ गई है। कड़ा भोजन न कर सकेंगे।

श्रीरामकृष्ण (मोहनभोग देखकर, नरेन्द्र से)। अरे माल आया है—माल-माल ! खा-खा ! (सब हँसते हैं)

क्रमशः दिन ढलने लगा। श्रीरामकृष्ण गिरीश के घर जायँगे। वहां आज उत्सव है। श्री रामकृष्ण बलराम के दुतल्ले के कमरे से उतर रहे हैं। साथ मास्टर हैं, पीछे और भी दो एक भक्त हैं। ड्योढ़ी के पास आकर उन्होंने एक हिन्दुस्तानी (पश्चिमी) भिक्षुक को गाते हुए देखा। रामनाम सुनकर श्रीरामकृष्ण खड़े हो गये। देखते ही देखते मन अन्तर्मुख होने लगा। इसी भाव में कुछ देर खड़े रहे। मास्टर से कहा, इसका स्वर बड़ा अच्छा है। एक भक्त ने भिक्षुक को चार पैसे दिये।

श्रीरामकृष्ण बोसपाड़ा की गली में घुसे। हँसते हुए मास्टर से पूछा, क्यों जी, क्या कहता है ?—"परमहंस-फौज आ रही है ? साले कहते क्या हैं।" (सब हँसते हैं)।

'नाथ ! अब धर्म की'

मर्म भूल धर्म का अधर्म में प्रवीण हुए
सुधि बुधि सब बिसराई सतकर्म की

दीन हीन हुए सर्व शक्तियां विलीन हुईं
मन भी मलीन लयलीनता अकर्म की

किया है विनाश कैसा अपना विरोधता में
हुए हैं अनाथ आज बात भूल मर्म की

कीजिये अनाथ को सनाथ नरनाथ आय
लाज है तुम्हारे हाथ नाथ ! अब धर्म की

कल्याण कुमार 'शशि' काशलीवाल।

परिव्राजक १

(स्वामी विवेकानन्द)

(गतांक से आगे)

यह स्वेज नहर भी बहुत पुरानी है। प्राचीन मिश्र के फेरो बादशाह के समय कुछ लवणाम्बु जल-भूमि जोड़कर एक नहर उभय-समुद्र-स्पर्शी तैयार की गयी। मिश्र में रोमराज्य के शासनकाल में भी कभी कभी उस नहर को मुक्त रखने की चेष्टा की गई थी। मुसलमान सेनापति अमरू ने मिश्र विजय करके उस नहर का बालू निकाल और उसके अंग-प्रत्यंग बदल कर एक प्रकार उसे नया कर डाला।

इसके बाद किसीने ज्यादा कुछ नहीं किया। तुर्की सुलतान के प्रतिनिधि मिश्र खेदिव इस्माइल ने फरासीसियों के परामर्श और अधिकांशतः उनके अर्थ से यह नहर खुदवाया था। इस नहर के लिये यह एक कठिनाई है कि मरुभूमि के भीतर से जानेके कारण यह बालू से भर जाती है। इस नहर के भीतर बड़ा व्यवसायी जहाज एक ही दफ़ा जा सकता है। सुना है, बहुत बड़ा जंगी जहाज़ अथवा व्यवसाय का जहाज़ बिल्कुल ही नहीं जा सकता। अब, एक जहाज़ जाता है और एक आता है। इन दोनों में संघात हो सकता है, इस विचार से कुल नहर कुछ भागों में बाँट दी गयी है और हर भाग के दोनों मुहाने में कुछ जगह ऐसी चौड़ी कर दी गयी है कि दो तीन जहाज़ एक जगह रह सकें। भूमध्यसागर के मुहाने में प्रधान कार्यालय है और हर विभाग में रेल स्टेशन की तरह स्टेशन है। उस प्रधान आफिस से जहाज़ के नहर में प्रवेश करने के बाद ही से क्रमशः तार से खबर जाती रहती है। कितने

जहाज आते हैं और कितने जाते हैं और प्रति मुहूर्त वे कौन कहां पर हैं, इसकी खबर जा रही है और एक बड़े नक्शे में इसके निशान लगाये जा रहे हैं। एक के सामने कहीं एक और न आये। इसलिये एक स्टेशन की आज्ञा बिना पाये जहाज़ दूसरे स्टेशन नहीं जा सकता।

यह स्वेज नहर फरासीसियों के हाथ में है। यद्यपि नहर-कम्पनी के अधिकांश शेयर इस समय अंग्रेजों के हाथ में हैं, फिर भी सब काम फरासीसी लोग ही करते हैं—यह राजनैतिक मीमांसा है।

अब भूमध्यसागर पड़ा। भारतवर्ष के बाहर ऐसा स्मृतिपूर्ण स्थान दूसरा नहीं है—एशिया, अफ्रीका प्राचीन सभ्यता के अवशेष हैं। एक जातीय रीति-नीति, भोजन-पान समाप्त हुआ, दूसरे प्रकारकी आकृति-प्रकृतियों, आहार-विहारों, परिच्छदों, आचार-व्यवहारों का आरम्भ हुआ—योरप आया। सिर्फ इतना ही नहीं, अनेक वर्णों, अनेक जातियों, सभ्यता, विद्या और आचारों के बहु शताब्दी-व्यापी जिस महा सम्मिश्रण के फल स्वरूप यह आधुनिक सभ्यता पैदा हुई है, उस सम्मिश्रण का महाकेन्द्र यहीं पर है। जो धर्म जो विद्या, जो सभ्यता, जो महावीर्य आज भूमण्डल व्याप्त होकर है, भूमध्यसागर के चारों ओर उसकी जन्मभूमि है! उस दक्षिण में आश्चर्य विद्या का आकर, बहु धन धान्य प्रसू, अति प्राचीन मिश्र है; पूर्व में फिनीसियन, फ़िलिस्टिन, यहूदी, महाबल बाबिल, आसीर और ईरानी सभ्यता की प्राचीन रंगभूमि—ऐशिया माइनर उत्तर की ओर सर्वाश्चर्यमयी ग्रीक जाति का लीलाक्षेत्र है।

स्वामी जी, देश-नदी-पहाड़-पर्वतोंकी कथाएं तो बहुत तुमने सुनीं, अब कुछ प्राचीन कहानियां सुन लो। ये प्राचीन कहानियां बड़ी अद्भुत हैं। कहानियां हो नहीं—यह सत्य है; मनुष्य

जाति का यथार्थ इतिहास है। ये सब प्राचीन देश काल-सागर में प्रायः लीन थे। जो कुछ आदमियों को मालूम था, वह प्रायः प्राचीन यवन ऐतिहासिकों के अद्भुत आख्यायिकायों के रूप के प्रबन्ध अथवा बाइबिल नामक याहूदी पुराणों की अत्यद्भुत वर्णनामात्र है। अब पुराने पत्थर, मकानात, टाली में लिखी किताबें और भाषा विश्लेषण इस युग से कहानियां सुना रहे हैं। ये कहानियां इस समय सिर्फ शुरू की गई हैं। लेकिन अभी ही कितनी तअज्जुब में डालनेवाली बातें निकल पड़ी हैं। बाद को क्या निकलेगा कौन जाने? देश देशान्तरों के महा महा पण्डित दिन रात एक टुकड़ा शिलालेख या टूटा बर्तन या एक मकान अथवा एक टाली लेकर दिमाग लड़ा रहे हैं, और उसकाल की लुप्त बाताएं निकाल रहे हैं।

जब मुसलमान नेता ओसमान ने कानस्टान्टिनोपल पर अधिकार किया, समस्त पूर्व योरप में इसलाम की ध्वजा सगर्व उड़ने लगी। तब प्राचीन ग्रीकों की जो सब पुस्तकें, विद्या बुद्धि उनके निर्वीर्य वंशधरों के पास छिपाई हुई थी, वे पश्चिम-योरप में भागे हुए ग्रीकों के साथ साथ फैल गई। ग्रीकलोग, रोम के बहु काल पैरों तले रहने पर भी विद्या और बुद्धि में रोमवालों के गुरु थे। यहां तक कि ग्रीकों के क्रिस्तान होने और ग्रीक भाषा में क्रिस्तान धर्म ग्रन्थों के लिखे जाने के कारण तमाम रोम साम्राज्य पर क्रिस्तान धर्म की विजय हुई। लेकिन प्राचीन ग्रीक जिन्हें हम लोग यवन कहते हैं, जो लोग यूरोपी सभ्यता के आदि गुरु हैं, उनकी सभ्यता का परम उत्थान क्रिस्तानों के बहुत पहले हुआ। क्रिस्तान होने के वक्त से ही उनकी विद्या बुद्धि सब लुप्त हो गई; लेकिन हिन्दुओं के घरों में जैसे पूर्व पुरुषों की विद्या बुद्धि कुछ कुछ रक्षित है, उसी तरह क्रिस्तान ग्रीकों के पास थी; वही सब किताबें चारो तरफ फैल गईं। उसीसे अंग्रेज, जर्मन, फ्रेंच आदि जातियों में पहली सभ्यता का उन्मेष

हुआ। ग्रीक विद्या के सीखने की एक धूम पड़ गई। पहले जो कुछ उन पुस्तकों में था, वह हाड़ सहित निगाला गया। इसके बाद जब बुद्धि मार्जित होने लगी और क्रमशः पदार्थ विद्या का अभ्युत्थान होने लगा, तब उन सब ग्रन्थों का समय, प्रणेता, विषय आदि की यथातथ्य गवेषणा चलने लगी। क्रिस्तानोंके धर्म-ग्रन्थों को छोड़ कर प्राचीन क्रिस्तान ग्रीकों के कुल धर्मग्रन्थ पर मतामत जाहिर करने में कोई बाधा तो थी नहीं, इसलिये बाह्य और आभ्यन्तरिक समालोचना की एक विद्या निकल पड़ी।

सोचो, किसी पुस्तक में लिखा है कि अमुक वक्त अमुक घटना हुई थी। किसी ने कृपा पूर्वक किसी पुस्तक में कुछ लिख दिया है, इसीलिये क्या वह सब सच हो गया? विशेषतः उस काल के आदमी बहुत सी बातें कल्पना से लिखा करते थे। दूसरे प्रकृति, यहां तक कि पृथ्वी के सम्बन्ध में ज्ञान थोड़ा था; यही कारण ग्रन्थोक्त विषयोंकि सत्यासत्य निर्णय में विषम सन्देह पैदा करने लगे; सोचो, एक ग्रीक ऐतिहासिक ने लिखा है, कि अमुक समय भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त नामक एक राजा था। यदि भारतवर्ष में भी उसी समय उस राजा का उल्लेख देख पड़े, तो विषय का बहुत कुछ प्रमाण निस्सन्देह हो गया। यदि चन्द्रगुप्त के कुछ रुपये मिले अथवा उनके समय की एक इमारत मिल जाय जिसमें कि उनका उल्लेख है, तो फिर और किसी तरह का सन्देह या कमजोरी न रह गई।

सोचो किसी दूसरी पुस्तक में लिखा है, कि एक यह घटना सिकन्दर बादशाह के समय की है, लेकिन उसके भीतर दो एक रोम के बादशाहों का जिक्र आ गया है। वह इस तरह आया है कि प्रक्षिप्त होना सम्भव नहीं—तो वह पुस्तक सिकन्दर बादशाह के वक्त की नहीं है, यह साबित हो गया।

अथवा भाषा—समय समय पर सभी भाषाओं का परिवर्तन हो रहा है, इधर एक एक लेखकों में एक एक ढंग रहता है। यदि किसी पुस्तक में ख्वामख्वाह एक अप्रासंगिक वर्णना लेखक के विपरीत ढंग से रहे तो ज़रूर उस पर प्रक्षिप्त होने का सन्देह और संशय होते हैं। प्रमाण-प्रयोगों से ग्रन्थ-तत्व के निर्णय की एक विद्या ही निकल पड़ी।

इसके ऊपर आजकल का विज्ञान द्रुत गति से अनेक ओरों से रश्मि विकीरण करने लगा ; फल—जिस पुस्तक में कोई अलौकिक घटना लिखी हुई है, वह बिल्कुल ही अविश्वास्य हो पड़ी।

सबसे ऊपर—महातरंग रूप संस्कृत भाषा का योरोप में प्रवेश है और है भारतवर्ष में, यूफ्रेटिस् नदी के किनारे और मिस्र देश में प्राचीन शिला-लेखों का पुनः पठन ; और है बहुकाल भूगर्भ में अथवा पर्वतों के पार्श्व में छिपाये हुए मन्दिरादियों की आदि मिला और उनके यथार्थ इतिहास का ज्ञान। पहले ही कहा है कि यह नूतन गवेषणा विद्या ने "बाइबिल" या "न्यूटेस्टामेण्ट" ग्रन्थों को अलग कर रक्खा था। मार-पीट, जीता जलाना आदि तो अब है नहीं, है सिर्फ समाजका डर ; सो इसकी उपेक्षा करके कुछ पण्डितों ने उक्त पुस्तकों का भी निहायत विश्लेषण किया। आशा है, हिन्दू आदि की धर्म-पुस्तकों को वे लोग जिस तरह लापरवा होकर टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं, उसी तरह आगे चलकर सत् साहस के साथ यहूदी और क्रिस्तान पुस्तकों के साथ बर्ताव करेंगे। यह बात क्यों कहता हूं, इसका एक उदाहरण दूं,—मासपेरो नाम के एक महा-पण्डित, मिश्र पुरातत्व के प्रतिष्ठ लेखक ने "इस्तोआर आसिएन ओरी औताल" नाम से मिश्रियों और बाबिलों का एक प्रकाण्ड इतिहास लिखा है। कई साल पहले उक्त ग्रन्थ का एक अंग्रेज पुरातत्वविद् द्वारा किया हुआ अंग्रेजी में अनुवाद पढ़ा था। अब के सिविल

म्यूज़ियम के एक अध्यक्ष से मिश्र और बाबिलन सम्बन्धी कुछ पुस्तकों के विषय पर पूछते हुए मासपेरो के ग्रन्थ का उल्लेख आया। इसपर ? मेरे पास उक्त ग्रन्थ का तर्जुमा है, ठनकर उन्होंने कहा कि इससे न होगा, अनुवादक कुछ कट्टर क्रिस्तान है। इसलिये जहां जहां मासपेरो का अनुसन्धान क्रिस्तान धर्म को धक्का पहुंचाता है, वह सब गोल-मटोल कर दिया गया है। मूल फरासीसी भाषा में ग्रन्थ पढ़ने के लिये कहा। पढ़कर देखता हूं, कि बिलकुल ठीक, यह तो एक विषम समस्या हो गई है। जानते तो हो कि धर्म की कैसी कट्टरता है—सत्यासत्य सब खासी खिचड़ी के रूप में। तभी से उन सब गवे-षणावाले ग्रन्थों के अनुवाद से बहुत कुछ श्रद्धा घट गई है।

एक और नई विद्या पैदा हुई है, जिसका नाम जाति-विद्या है; अर्थात् आदमी का रंग, बाल, चेहरा, सिर की गढ़न, भाषा आदि देखकर, श्रेणीबद्ध करना।

जर्मन लोग सब विद्याओं में विशारद होने पर भी संस्कृत और प्राचीन असीरिया की विद्याओं में विशेष पटु हैं ; वर्गस, आदि जर्मन पण्डित इसके निदर्शन हैं। फरासीसी प्राचीन मिश्र के तत्त्वोद्धार में विशेष सफल हुए हैं।—मासपेरो आदि—सब फरासीसी है। डचलोग यहूदी और प्राचीन क्रिस्तान धर्म के विश्लेषण में विशेष प्रतिष्ठित हैं—कूना आदि लेखक संसार प्रसिद्ध हैं।

अंगरेज लोग पहले अनेक विद्याओं का आरम्भ करके फिर हट जाते हैं।

इन सब पण्डितों के मत कुछ कहूं। यदि अच्छा न लगे, उनके साथ तूल-तकरार कर मेरा दोष न देना।

हिन्दू, यहूदी, प्राचीन बाबिली, मिश्री आदि प्राचीन जातियों के मत से सब आदमी एक आदिम पिता-माता से पैदा हुए हैं, यह बात अब बहुत कुछ लोग नहीं मानना चाहते।

चक्र बाले, बिना नाक के मोटे होंठवाले, ढालू कपाल, और घुंघराले बालवाले काफ्रियों को तुमने देखा है? प्राय: उसी तरह की गठन है, सिर्फ आकार के छोटे हैं, बाल इतने घुंघराले नहीं, सौंताल, अन्दमानी, भीलों को देखा है? पहली श्रेणीवाले के लिये काले हैं, इनकी वासभूमि अफ्रीका है। दूसरी जाति का नाम है नेग्रिटो—छोटे निग्रो; ये लोग पुराने जमाने में अरब के कुछ अंश में, युफ्रेटिस के तटों के कुछ अंशों में, फारस के दक्षिण भाग में, तमाम भारतवर्ष में, अन्दमान आदि द्वीपों में यहाँ आस्ट्रेलिया तक निवास करते थे। आधुनिक समय में भारतवर्ष के किसी किसी घोर जंगल में,—अन्दमान और आस्ट्रेलिया में ये लोग मौजूद हैं।

लेपचा, भूटिया, चीनी आदि को तुमने देखा है?—सफेद रंग या पीला, सीधे और काले बालवाले; काली आंखें, लेकिन वे तिरछी बैठाई हुईं, मूंछ-दाढ़ी थोड़ी सी, चिपटा मुंह, आंखों के नीचे की हड्डी का भाग बहुत ऊंचे।

मलायी, नेपाली, बर्मी, स्यामी, जापानी देखे हैं? ये लोग उसी गठन के हैं, लेकिन आकार के छोटे हैं।

इस श्रेणी के दोनों जातियों के नाम मोगल और मोगलौड—छोटा मोगल है। मोगल जाति इस समय अधिकांश पश्चिमांचल दखल कर बैठी है। यही मोगल है, जो अनेक शाखाओं में—चीनवाले, मुंहवाले हुन, चीनी, तातारी, तुर्क, मान्चु, किरगिज आदि विभिन्न शाखाओं में बटकर, एक चीनियों और तिब्बतियों के सिवा, तम्बू लेकर आज इस देश में, कल उस देश में, इस तरह भेड़-बकरियाँ और घोड़े चराते फिरते, और घात मिलने पर टिड्डियों की तरह दुनिया उलट-पुलट देते थे। इन लोगों का एक नाम तूरानी है। ईरान-तूरान—वही तूरान।

रंग काला, परन्तु बाल सफेद, सीधी नाक, सीधी काली आंखें—

प्राचीन मिस्र, प्राचीन बाबिलोनिया में वास करते थे और आजकल भारतवर्ष भर में हैं। विशेषतः दक्षिण में वास करते हैं; योरप में भी एक आध जगह उनके निशान मिलते हैं, यह एक जाति है, इनका पारिभाषिक नाम है—द्राविड़ी।

नाक सफेद रंग, सीधी आंखें परन्तु नाक, बकरे के मुंह की तरह मुड़ी और सिर मोटा, कपाल ढालू, होंठ भरे हुए—जिस तरह अरब देश के आदमी, वर्तमान यहूदी, प्राचीन बाबिल, असीरी, फिनिस आदि; इनकी भाषा भी एक तरह की है; इनका नाम है सेमिटिक।

और जो लोग संस्कृत की तरह भाषा बोलते हैं, सीधी नाक मुंह आंखें, रंग सफेद, बाल काले या खाकी, आंखें काली या नीली, इनका नाम है आर्यन्।

वर्तमान समस्त जातियां इन्हीं सब जातियों के मिश्रण से हुई हैं। उनके भीतर जिस जाति का भाग जिस देश में अधिक है, उस देश की भाषा और आकृति अधिकांशतः उसी जाति की तरह है। गर्म मुल्क होने पर रंग काला और ठंढा मुल्क होने पर सफेद होता है, यह बात यहाँ के बहुत से लोग नहीं मानते। काले और सफेद के अन्दर जो रंग हैं, बहुतों के मत से जातियों के मिश्रण से वे तैयार हुए हैं।

मिस्र और प्राचीन बाबिलों की सभ्यता पंडितों के मत से सबसे प्राचीन है। इन सब देशों में क्राइस्ट से पहले ६००० वर्ष या उससे अधिक समय के मकानात मिलते हैं। भारतवर्ष में ज्यादा से ज्यादा चन्द्रगुप्त के समय का अगर कुछ मिला हो,—क्राइस्ट से पहले ३०० वर्ष सिर्फ होते हैं। इसके पहले के मकानात अभी नहीं मिले। परन्तु उसके बहुत पहले की पुस्तकें हैं, जो और किसी देश में नहीं मिलतीं। पंडित बालगंगाधर तिलक ने साबित किया है कि हिन्दुओं के "वेद" कम से कम क्राइस्ट के ५००० वर्ष पहले इसी रूप में मौजूद थे।

गोपीचन्द भर्तृहरि।

(ले०, श्री आनन्द कुमार जैन, रामपुर स्टेट।)

हमारे भारतवर्ष के ग्रामों में जहाँ प्राचीन सभ्यता अभी तक अवशेष है, प्राय: जब कभी कोई साधु भिक्षुक अपनी टूटी खपनी अथवा करकराती हुई सारंगी बजा कर भजन सुनाकर भीख मांगने निकलता है, तब ग्रामीण नर नारियां, सभी बड़े चाव के साथ गोपीचन्द भर्तृहरिका गीत सुना करते हैं, बाबाजी की तान नितान्त बेतुकी होने पर भी न जाने यह गीत कितना भावपूर्ण और आकर्षक होता है कि स्त्रियों के ही नहीं पुरुषों के हृदय पर भी इसका अद्भुत प्रभाव पड़ता दिखाई देता है।

इन गीतों के इतने आकर्षक होने का मुख्य कारण दो बहिन भाइयों के परस्पर प्रेम की कथा है ; इसीलिए यह कथा स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए एकसी मनोरंजक प्रतीत होती है। आज हम अपने पाठकों को इस गीत का संक्षिप्त इतिहास सुनाते हैं ; आशा है, क्षण भर के लिये पाठकों का अच्छा मनोरञ्जन हो जायगा :—

महाराज गोपीचन्द भर्तृहरि धारा नगरी के सुप्रसिद्ध राजा थे, महाराज की माता मैनावती को पण्डितों द्वारा यह विश्वास दिलाया गया कि यदि महाराज अपना राजपाट त्याग कर गोपीचन्द का योग धारण कर लें तो इस विनश्वर विश्व में अमर पद प्राप्त कर सकते हैं, विचारशीला माता ने उसी समय गोपीचन्द को योग धारण कर लेने की आज्ञा दे डाली। माया एक बार उनके इस पुण्य पथ पर विलास का प्रलोभन देने लगी। गोपीचन्द का हृदय भी बहुत कुछ हिल-किचाया पर अन्त में माता के आदेश की ही विजय हुई और वे निकटवर्ती एक महर्षि के पास जाकर दीक्षित हो गए।

गोपीचन्द की चम्पावती नाम की एक बहिन भी थी, जो बंगाल-देशाधिपति महाराज क्षत्रसिंह को व्याही थी और जिसका पाणिग्रहण-संस्कार गोपीचन्द ने अपने ही हाथों किया था। चम्पावती का भाई पर अतीव अनुराग था, अत: गोपीचन्द की माता जानती थी कि भाई पर प्राण निछावर करने वाली चम्पावती गोपीचन्द को एक भिखारी के भेष में देखना सहन न कर सकेगी ; अत: योगी होते समय माता ने गोपीचन्द को अच्छी तरह समझा दिया था कि बंगाल देश की तरफ बहिन के राज्य में कभी न जाना।

अब गोपीचन्द धारा नगरी के राजा न थे। गिरि-गुफायें और घाटियों की हरियाली उनकी प्रजा और उनके राज महल थे। उनका अटल राज्य था। जिन राज महलों के कभी गोपीचन्द स्वामी थे अब उन्हीं महलों के द्वारों पर आप भिक्षाटन के लिये उपस्थित होते थे। जो स्त्रियां आप के चरणों की आठों पहर सेवा करती थी उन्हीं के आगे हाथ पसार कर मांगा हुआ भिक्षा दान अब गोपीचन्द का आहार था। योगाभ्यास गोपीचन्द का व्यसन था।

परन्तु योगी हो जाने पर भी एक बार अपनी बहिन चम्पावती को देखने की इच्छा गोपीचन्द के मन में अब भी बाकी थी। प्रेम के वश आप माता के वचनों को सर्वथा भूल गये। भिक्षुक के वेष में बंगाल की तरफ आ ही निकले। थोड़ी ही दूर चलने के पश्चात् गोपीचन्द को प्यास के तीव्र आवेग ने धर दबाया। पास के एक कुएं पर एक स्त्री को पानी भरते देख, उससे जल पिलाने की प्रार्थना करने लगे।

यह स्त्री बंगाल की प्रख्यात जादूगरनी एक तम्बोलिन थी। पानी पिलाने के बहाने वह गोपीचन्द को घर ले गई। सरल हृदय गोपीचन्द को इस भेद का कुछ पता न था। जल पीने की इच्छा से उसके पीछे पीछे हो लिये।

घर ले जाकर तम्बोलिन ने सरसों पढ़ कर गोपीचन्द के सर पर मारा और अपने जादू के ज़ोर से इनको बैल बना दिया। अब राजा गोपीचन्द से बैल के रूपमें रात दिन कोल्हू में जोतने का काम लेने लगी। आह ! यही कर्मों की अद्भुत लीला है। कहाँ गोपीचन्द इधर आये थे बहिन को देखने के लिये लालायित हो कर और कहां वे फंस गये इस नई आपत्ति में !

जब कई मास व्यतीत हो गए, और गोपीचन्द न लौटे तब उस महर्षी को गोपीचन्द के गुरुजी को बड़ी चिन्ता हुई। एक दिन उन्होंने अपने योगाभ्यास से तम्बोलिन की जादूगरी का सारा वृतान्त जान लिया और गोपीचन्द को उस दारुण दुःख से छुड़ाने के लिये अपने अन्य सात सौ शिष्यों सहित बंगाल में आ पहुंचे।

तम्बोलिन भी सैंकड़ों घर आग लगाए बैठी थी। गुरु के संघ को शहर में आते ही ताड़ गई और इन पर भी अपना जादू चलाना चाहा तो योगिराज महर्षि पर यह प्रयोग न चला, किन्तु बेचारे चेले सब-के-सब तम्बोलिन की अद्भुत जादूगरी से ला पता हो गये।

अब गुरु की बारी आई। उसी कुंए के पास योगीराज महर्षि ने धूनी रमा दी और अपनी विद्या के बल से बंगाल की एक एक स्त्री को मेंढकी बना कूए के पास के चौ बच्चे में डालना आरम्भ किया और अपना एक एक शिष्य तत्काल अपने पास बुला लिया।

बंगाल की सारी नारियों के गायब हो जाने पर राजा क्षत्रसिंह के पास इस अद्भुत व्यापार की खबर पहुंची। राजा ने हुक्म दिया कि इस गुरु को मस्त हाथी से कुचलवा दिया जाय। राजा के आज्ञानुसार एक मस्त हाथी गुरु पर छोड़ा गया। यह वही हाथी था जिसे गोपीचन्द ने चम्पावती को दहेज में दिया था। हाथी के सामने आते ही गुरु ने चुमकार कर कहा बेटा, स्वामी के अन्न से तुम जन्म से पले हो, आज उसीके गुरु के प्राण लेने के लिए तुम आए हो ?' समझदार-हस्ती मस्तक झुकाकर गुरु के आगे आ बैठा।

इस समाचार ने बंगाल में और भी उद्विग्नता फैला दी। अन्त में बंगाल के पुरुषों ने निश्चय कर लिया कि गुरु की भक्ति के सिवाय इस भयंकर आपत्ति से छूटने का और कोई उपाय नहीं है।

अगले दिन बंगाल के सभी पुरुष गुरु के चरणों में आ गिरे और अपने विनय के साथ क्षमा की प्रार्थना की। गुरु ने क्षमा दे दी और बंगाल की एक एक स्त्री पुनर्जीवन लाभ कर अपने अपने घर पहुंच गई।

स्मरण रहे, इन सात सौ शिष्यों में अभी गोपीचन्द न थे, गोपीचन्द का छुटकारा, जिस के लिए गुरुदेव ने बंगाल में प्रवेश किया था अभी तक न हो सका था, अतः उसी मस्त हाथी पर आरूढ़ होकर योगीराज जादूगरनी तम्बोलिन के दरवाजे पर जा डटे, जहां वीर गोपीचन्द बैल के वेष में बंधे थे। तम्बोलिन ने गुरु को आते देख बैल को बकरा बना कर घर में छिपा दिया, गुरु ने इस बार तम्बोलिन को अन्धी बना कर एक गली की तरफ हकाला, तम्बोलिन का पति हाथ बांधकर गुरु के चरणों में आ पड़ा, बकरे को गुरु को सौंप कर स्त्री को भिक्षा देने की प्रार्थना करने लगा। गुरु ने अपने मन्त्रों की शक्ति से गोपीचन्द को असली रूप में बदल लिया और तम्बोलिन को क्षमा करते समय हमेशा के लिये प्रतिज्ञा करा ली कि कभी किसी पर जादूगरी न खेलेगी।

पुरुष रूप में आते ही गोपीचन्द फिर उसी प्रकार बहिन को देखने के लिये उत्सुक हो उठे और गुरु को साष्टांग प्रणाम कर आशीर्वाद ले चम्पावती के महलों की तरफ़ चल दिये।

चम्पावती की आज्ञा थी कि महलों के द्वार पर आनेवाले प्रत्येक भिखारी को शाल दुशाले जवाहिरादि से भिक्षापूर्ति की जाया करे।

गोपीचन्द ने महल के दरवाजे पर जा कर धूनी रमाई। बांदी आज्ञानुसार शाल जवाहिरादि लेकर भिक्षा देने के लिए आई, गोपीचन्द कहने लगे 'बेटी मैं योगी हूं, ऐसे जवाहरों और शाल दुशालों की मुझे आवश्यकता नहीं, ऐसी सम्पत्तियों को ठोकर मार कर मैं स्वयं घर से निकला हूं, मेरा पेट भर भोजन का सवाल है, और वह भी यदि रानी स्वयं अपने हाथों से देने आवे तो। एक बांदी के हाथ की भिक्षा मैं नहीं ले सकता'। बांदी यह सुनकर जल उठी, कहने लगी 'नराधम, एक भिक्षुक होकर तेरी यह धृष्टता, तेरे लिए तो मैं स्वयं रानी ही हूं, नखसे शिख तक सुवर्णाभरणों से सुसज्जित खड़ी हूं।' गोपीचन्द बोले 'बांदी तुमसी अनेक छोकरियां मेरे यहां घोड़ों की खिदमत पर नौकर थीं।' इतना सुनते ही बांदी के तन बदन में आग जल उठी, कोड़ा लेकर उसने गोपीचन्द को पीटना शुरू कर दिया। बहुत कुछ मार खा चुकने के पश्चात् गोपीचन्द बड़ी सहन शीलता के साथ कहने लगे 'रूपा ! तू वही छोकरी है जिसे मैंने धारानगरी में खरीदा था और अपनी बहिन चम्पावती के दहेज में दिया था। आज तूने मुझ ही पर ऐसा अत्याचार किया ! हा ! धिक्कार !' बांदी विस्मित होकर कहने लगी 'तो क्या आप धारानगरी के स्वामी महाराज गोपीचन्द हैं। यह कहते हुए बांदी की दृष्टि गोपीचन्द के मस्तक पर पड़ी। वहां उसने चन्द्रमा का आकार देखा, फिर पैर में कमल चिह्न देख कर भयार्त्त मूर्छित होकर गिर पड़ी। फिर सचेत होकर चरण पकड़ कर गोपीचन्द से क्षमा मांगने लगी। उदाराशय गोपीचन्द हंस कर बोले "रूपा ! यह तेरा नहीं मेरे अपने कर्म्मों का अपराध था।"

बांदी रोती हुई चम्पावतीके पास जा पहुंची। कहने लगी 'महारानी, तुम्हारे द्वारमें भिक्षुक नहीं, भिक्षुक के वेषमें महाराज गोपीचन्द तुम्हारे भ्राता हैं।" -

रानी ने कहा 'रूपा, बेफिक्री की रोटियां खा खाकर तेरी आंखों

पर चर्बी छा गयी है। मेरे भाई गोपीचन्द धारा नगरी के राजा हैं, उनके अन्तःपुरमें सोलह सौ रानियां और बत्तीस सौ बांदियां सेवक रहतीं हैं, एक लाख हाथी और सवा लाख घोड़े रहते हैं। क्या वे भिक्षुक होकर निकलेंगे, यह कह कर महले से नीचे उतर आई।

अनेक गहन आपत्तियों के पश्चात् आज गोपीचन्द को अपनी बहिन के देखने का समय मिला था, प्रेम से कलेजा भर आया आंखों में आंसू बह निकले। बहिन को देखते ही गद् गद् कंठ होकर कहने लगे 'बहिन, मुझे तेरे शाल दुशाले और जवाहिरों की चाह नहीं...!!

गोपीचन्द के मुखसे अभी पूरी बात नहीं निकली थी कि "बहिन" का शब्द मुंह से निकलते ही चम्पावती चमक उठी और बोली 'योगीराज' तुम भिक्षुक हो, मुझे बहिन बनाने का तुम्हें अधिकार नहीं, मैं तुम्हारी बहिन नहीं, धारानगरीश महाराज गोपीचन्द की बहिन और बंगाल-देशाधिपति महाराज क्षत्रसिंह की महारानी हूं। यह कहते ही कहते दैव-योग से चम्पावती की दृष्टि मस्तक के चन्द्राकार पर जा पड़ी। फिर क्या था क्षण भर में आंखों का पर्दा दूर हो गया ! भाई को भिक्षुक के भेष में पहचान लिया। एक दम प्रेम से गले मिलने के लिए गोपीचन्दकी तरफ बढ़ी। गोपीचन्द पीछे हट गए और कहने लगे 'चम्पावती अब मुझे तुमको गले लगाने का अधिकार नहीं। अब मैं तेरा भाई नहीं, एक भिक्षुक हूं, योगी हूं।

चम्पावती रोने लगी और फूट-फूट रोई। अपने सारे आभरण उतार कर फेंक दिए और कहने लगी 'महाराज, यदि तुम योगी हो तो मैं योगिन बनूंगी। जहां तुम होगे, वहीं मैं होऊंगी। मुझे भी अपने साथ ले चलने की कृपा कीजिये'।

गोपीचन्द ने कहा 'चम्पावती, गुरू की ही ऐसी आज्ञा है कि मैं किसी स्त्री को अपने साथ नहीं रख सकता चाहे वह बहिन हो या

माता। तेरा प्रेम तुझे देखने के लिए मुझे तेरे द्वार तक लाया था। तू चिरकाल तक राज्यसम्पदा का सुख भोग, यही मेरा अन्तिम आशीर्वाद है।

यह कह कर गोपीचन्द चलना ही चाहते थे कि चम्पावती ने गोपीचन्द का पल्लू पकड़ लिया। रोकर कहने लगी :—

भ्राता, यदि इस संसार में जीऊंगी तो तुम्हारे साथ रहूंगी अन्यथा प्राण दे दूंगी।

गोपीचन्द ने चम्पावती का दुराग्रह दूर करने के लिए बहुत कुछ समझाया पर उसने एक न माना। लाचार होकर गोपीचन्द ने एक उपाय सोचा, जो यह था कि गोपीचन्द ने एकाएक चौंककर महल की ओर देख कर कहा, 'आह! बहिन, तेरे महल में आग लग उठी!!'

ज्योंही चम्पावती ने चकित हो कर महल की ओर मुंह फेरा गोपीचन्द आंखों से ओझल हो गए। आंख फेर कर देखा तो गोपीचन्द न थे। पृथ्वी—आकाश छान डाला, कहीं गोपीचन्द का पता न पाया, कहते हैं चम्पावती रोते रोते भाई के वियोग में खड़ी खड़ी पथरा गई।

अनादर!

(रचयिता:—ठा० कृपानारायण सिंह 'विभूति' जमालपुर)

विदा हुआ मैं आज यहां से—
रहा न मेरा डेरा!
चिड़ियां उड़ी घोसला से जब—
खाली पड़ा बसेरा!!
चला हूं जिस पथ पर उसका—
नहीं है कुछ भी घेरा!
कभी न मुझको तुम पाओ गे—
देते गृहका फेरा!!

उपास्य देव।

(लेखक, पं० हनूमान शर्मा चौमू)

हे भगवन्, आप कौन हैं यह मैं नहीं कह सकता और आपके नाम-धाम-तथा-काम आदि क्या हैं, सो भी मैं नहीं जानता।

इतना आनता हूं कि हिन्दू अपने मन्दिरों में मुसलमान अपनी मसजिदों में और अंग्रेज अपने गिर्जाघरों में, जिसका जप-ध्यान या उपसना करते हैं, वह शायद आप ही हैं।

मेरा अनुमान तो यह है कि निकृष्ट से निकृष्ट, उत्कृष्ट से उत्कृष्ट, जितने प्रकार के पेशा करने वाली जातियां हैं और वे प्रतिदिन अपना कार्य आरम्भ करते समय, जिसको याद करते हैं, शायद वह आप ही हैं।

यदि मेरा यह अनुमान ठीक है (और है ही) तो सूर्यचन्द्र-तारागण, इन्द्र अग्निमरुद्गण, ब्रह्माविष्णु महेश्वर, भैरवभवानी गणाधिप-अल्लाखुदामहम्मद और ईसुमसीह या क्रीयेटर आदि जितने उपास्य देव हैं, सब आपही के रूपान्तर हैं।

यह तो केवल आपकी माया है, जो लोग इतने भिन्न-भिन्न नाम और इतनी भिन्न-भिन्न प्रतिमाओं की कल्पना करके भिन्न-भिन्न प्रकार से आपकी पूजा करते हैं और उससे भिन्न-भिन्न प्रकार की इष्टसिद्धि समझते हैं।

यदि लोग प्रत्येक प्रतिमा या प्रत्येक देवता में आपही की सत्ता मानलें और सबको छोड़कर अकेले आपही पर भरोसा करलें, तो उनको जिस प्रकार अन्यान्य देवताओं से अनेक सहज में अभीष्टों की सिद्धि होती है, सब आपही से हो सकती है।

किन्तु एक कठिनाई है। वह यह है कि एक प्रकार से तो आपके नाम गुण दोष और रूप रङ्ग आदि अनेक हैं और एक प्रकार से वे सब आपमें कुछ भी नहीं है। ऐसी दशामें अल्पज्ञ उपासक आपको पहचानते ही नहीं।

हमारे लिए भैरव या भवानी ही भवहारिणी हो जाती हैं। गणेश ही ऋद्धि सिद्धि देनेवाले बन जाते हैं। हनुमान ही मान बढ़ाने में समर्थ होते हैं और लक्ष्मी ही अमित सम्पत्ति का अनुभव कराती हैं।

इस सम्बन्धमें मैं तो यह कहूंगा कि यदि उपासक लोग सीधे आपही से अभीष्ट सिद्धि की आशा करें तो अन्य देवताओं के पास उनको जाना ही न पड़े। उनकी अभीष्ट सिद्धि आपही से हो जावे। परन्तु आपमें भी एक ऐब है। आप पर्दे में छिपे रहना पसंद करते हैं। प्रत्यक्ष रहकर प्रत्येक प्रार्थी की आशा सफल करना आप अपने लिए अपमानजनक समझते हैं।

शायद आपका यह खयाल है कि करोड़ों मनुष्यों की करोड़ों कामनाऐं किसी एकही जगह में सफल होना सुविधाजनक नहीं। करोड़ों उपासकों के लिये तो करोड़ों उपास्य देव ही अच्छे हैं। अस्तु आपका यह प्रबन्ध अनुचित नहीं, उचित ही है। क्योंकि कोई भी देवता काम तो करेगा, आपकी अनुमतिके अनुसार ही फिर व्यर्थ ही करोड़ों आशार्थियों का आपके पास इकट्ठे होना किस कामका? परन्तु एक विचार आता है वह यह है कि यदि वे करोड़ों आशार्थी किसी दिन यह मानलें कि जिस भाँति अन्य देवताओं में आपकी सत्ता काम कर रही है, वही सत्ता उसी भाँति हम में भी काम करे, और हम जो अन्य देवताओं में या आपमें विश्वास रखते हैं, वही विश्वास अपने आपमें करें तो क्या हमारी इष्ट सिद्धि नहीं होसकती है? अवश्य हो सकती है और सुविधा के साथ हो सकती है फिर तो आपको पूछने वाला कौन रह सकता है।

प्रत्येक प्रार्थी अपने अंतःकरण में प्रविष्ट होकर आपकी उपासना अपनी ही अन्तरात्मा में कर सकता है। और उसकी संपूर्ण अभीष्ट सिद्धि आपसे ही हो सकती है। कठिनाई केवल यही है कि उपासक लोग आपके स्वरूप को जानते नहीं हैं।

सर्व साधारण के हितके लिये हमारे तत्वदर्शी पूर्वाचार्योंने आपके स्वरूपका स्वतः प्रभाव होनेके लिए एक उपाय सोचा है। उस विचार में आपही का प्रतिरूप एक देवता बतलाया गया है; और उसकी उपासना का संसार की सभी जातियों को अधिकार दिया है।

हम देखते हैं कि वास्तव में वह देवता आपसे बहुत मिलता हुआ है। आपके और उसके प्रायः सभी गुण एकसे हैं। आकार प्रकार और प्रकृति आदिमें भी आपके और उसके बहुत कुछ साम्यता हैं।

शास्त्रोंकी तो यह सम्मति है कि जो लोग आपको देख नहीं सकते हैं वे उसको देखकर ही आपके देखने के बराबर हो सकते हैं प्रायः वैसा ही फल पासकते हैं। वास्तव में आपके सब गुण उसमें हूबहू मौजूद हैं।

प्रमाण लीजिये। जिस प्रकार आप साकार या निराकार रूप से चराचर में विद्यमान हैं। उसी प्रकार वह भी संसार के प्रत्येक प्राणी पदार्थों में साकार निराकार दोनों रूप से प्रतिबिंबित होता है और जिस प्रकार आप सारे संसारके कर्ता-धर्ता विधाता और विनाशकर्ता हैं उसी प्रकार वह भी प्रत्येक प्राणी और पदार्थ का चैतन्यकर्ता जीवनदाता और नाशकर्ता है। तत्वज्ञ महर्षियोंने उपासकों के लिए उस देवताको अधिक प्राधान्य दिया है।

आखिर वह देवता है कौन? वही, जो प्रातःकाल पूर्व में उदय होता है और सायंकाल पश्चिम में अस्त होता है। अथवा आकाश में असंख्य तारागण—जिनकी विज्ञानवेत्ता बहुत बड़ाई करते हैं

सभी—उसीके प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं, और पृथ्वीपर के चमकदार पदार्थों में उसीका प्रतिबिंब परिलक्षित हुआ करता है।

इस उक्तिसे तो यही सिद्ध होता है कि सबका सूर्य ही उपास्य-देव है। इसी लिए महर्षियों ने संसारकी प्रायः सभी जातियों के लिए सूर्य की उपासना उपादेय और हितकर बतलाई है और विज्ञानकी दृष्टि तथा आरोग्य वृद्धिके विचारसे भी वह सर्वोपरि फलदायी हैं। इतना ही नहीं वर्तमान युगमें तो सूर्योपासक ही अधिक हैं।

यह कहना आवश्यक नहीं कि सूर्य के प्रकाश से संसार का अनेक प्रकारसे हित होता है। उसका यहाँ विवरण दिया जाय तो पाठकोंको बहुतसी बातें बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकती हैं। किन्तु स्थानाभावसे यहाँ अधिक नहीं लिख सके हैं।

वर्तमान युगके विज्ञानवेत्ता सूर्य की किरणोंमें कई प्रकार के काम करते हैं। तेल-कोयला और आतप आदि के अभाव में तज्जन्य काम सूर्य के प्रकाश से ही सम्पादन किए जाते हैं। औषधि आदिसे आरोग्य न होनेवाले रोगियोंको आज कल सूर्य किरणों से ही आरोग्य करते हैं। यही क्यों शरीरके अन्दर किसी भी जगह कोई घातक वस्तु अटक जाती है तो वह सूर्य किरण (एक्सरेज) की सहायता से ही ढूँढ़ ली जाती है और मरणोन्मुख मनुष्य बच जाते हैं।

इस प्रकार के अगणित गुणोंका अनुभव करके ही हमारे महर्षियों ने भगवान् को और सूर्य भगवान् को एक माना है। वास्तव में ऐसा मानना सर्वथा संगत है। हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि शास्त्रोंमें भगवान के स्वरूप का जो कुछ यथार्थ वर्णन किया गया है वह सब सूर्य भगवान् के स्वरूप में यथावत प्रतिबिंबित होता है। और भगवान की जो कुछ अलौकिक महिमा गाई गई है वह सब सूर्य में संघटित होती है।

यही कारण है कि त्रैवर्णकों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-और वैश्यों) की वैदिक संध्यामें सविता और सावित्री का ही प्राधान्य है और इसी

कारण त्रैवर्णकों को विशेष कर ब्राह्मणों के लिए प्रति दिन सन्ध्या (सविता का सम्यक ध्यान) करना अनिवार्य बतलाया हैं।

यहाँ इस बातका विचार विशेष आवश्यक होता है कि जिस भाँति भगवान् और सूर्य भगवान का साम्य स्वीकार किया है उसी प्रकार सविता और सावित्रीका साम्य भी सहर्ष स्वीकार किया गया है।

त्रैवर्णिकों—विशेषकर ब्राह्मणों के लिए सूर्य की उपासना और गायत्री के जप सर्वोत्कृष्ट संपत्ति के समान माने गए हैं। सूर्यकी महिमा और गायत्री का महत्व बड़े-बड़े दिग्गज पंडितों ने विस्तार के साथ वर्णन किया है।

इस विषय में एक इतनाही कह सकते हैं कि ब्राह्मणोंके लिए गायत्री एक अमोघ अस्त्र है। इसकी साधना से वे प्राचीनकाल के ऋषि महर्षियों की तरह परम तेजस्वी और सर्व समर्थ हो सकते हैं।

इसके चौवीस अक्षरोंमें बड़े-बड़े गुणकारी और लाभदायक तत्व सन्निविष्ट हैं। पवित्र दशामें शुभासन पर बैठकर-एकान्त में इसके यथाविधि जप किए जाँय तो जाप की प्रतिभा या प्रभाव अत्यन्त व्यापक हो जाते हैं।

एक बार महर्षि गौतम ने चौदह वर्ष के संसारव्यापी अकालका इसीके अनुष्ठान से निवारण किया था। और अगणित मनुष्यों को यथापूर्व सुख लाभ करवाया था। अस्तु।

हे भगवन्! इस परिलेख से तो यही प्रतिध्वनित होता है कि, हम आपके स्थान पर सविता और सावित्री की उपासना करके सहज ही आपके स्वरूप को सांगोपांग जान सकते हैं। और जब चाहें तब प्रत्यक्ष में अथवा आँख मूँदकर भी आपके दर्शन कर सकते हैं। अच्छी बात है।

मृत्यु !

(ले०—श्री बनारसी प्रसाद 'भोजपुरी', 'भूतपूर्व संयुक्त सम्पादक मतवाला')

क्या करें ? कहां जायें ? मृत्यु ? भयङ्कर मृत्यु ! आ गयी ! विकराल मुंह फैलाये, हाथों में भयङ्कर कालदण्ड लिये, सर्पा भा धमकी ! आह ! अब इस मायावी संसार के आनन्द कहां मिलेंगे ? प्यारी स्नेहमयी माताजी से कहां भेंट होगी ? कहां हम—लाख अपराध करनेपर भी "बेटा कहां गये थे, शीघ्र आओ ! तुम्हारे लिये बहुत सी सामग्रियां एकत्र की हुई हैं" आदि वाक्योंसे परितोषित होंगे ? आने दो, हृदय में अनुराग की ज्वाला धधकने लगती है। वह अलसांयी आँखें, चन्द्र-मण्डल को विनिन्दित करनेवाला मुख-मण्डल कहां मिलेगा ? यह क्या ? यह तो स्वयं करुण-क्रन्दन कर रही है। नन्हें-नन्हें बच्चे रोते-रोते भूमिशायी हो गये हैं। हाय रे पिशाचिनी मृत्यु ! तुम्हें इस भीषण दृश्यपर भी दया नहीं आती ! सोचा था बन्धु बान्धव आनन्द का उपभोग करेंगे। यही कारण था कि, एक स्त्री के रहते हुए भी दूसरी नवोढ़ा बीबीसे हाल ही में शादी की थी। किस लिये ? विषय क्रीड़ाके लिये। हमने निश्चय कर लिया था कि, संसारमें खाने, पीने और मौज उड़ानेके सिवा दूसरा कोई सुख नहीं। पर यह तो अजीब परिवर्तन हो गया। बीच ही में यह क्या ? अब इस संसारमें नहीं रहना होगा ? इस सुन्दर शरीर को परित्याग कर यमराज के इजलास में बयान देना होगा ! कर्त्तव्याकर्त्तव्यके अनुसार पुण्यका फल सुख और पापका फल दुःख सरपर लेते हुए, पुनर्जन्म धारण करना होगा ? आह ! हत्यारिनी मृत्यु ! तेरा सर्वनाश हो। तूने धोखे से हमपर वार किया है। यदि

प्राण-निधिको लूटकर ले भागना ही था, तो पहले ही क्यों नहीं सावधान कर दी ? अहो उन दुःखी परिवारों को किस भांति परितोष दें ? उफ ! आँखों से झलाझल आँसू निकल पड़ते हैं। इस आलीशान इमारत में एक लाखके करीब रुपये लगाये थे ; किस लिये ?—शान शौकत के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करनेके लिये ! पर नहीं, अब एक भी चीज साथ नहीं जाती ! सबकी सब यहीं पड़ी रह जायँगी ! प्राण-पखेरू निकल जायँगे ! यह शरीर चिताग्निमें भस्मीभूत हो जायगा !!

कैसी मन्दबुद्धिता है ? अन्धकार ! महा अन्धकार !! सांसारिक मायाजाल में पड़कर सारी सुध-बुध भुला दी ! यदि मरना निश्चय है, मृत्युके भयङ्कर चाक में पीसा जाना आवश्यक है, तो, संसार को सत्य माननेसे लाभ क्या हुआ ? हाय, हाय, सारा जीवन पापपूर्ण हो गया। उस महाप्रभु के सामने किस भांति सर उठायेंगे ? जीवनभर व्यसनोंमें तल्लीन रहे। धर्म क्या वस्तु है, समझनेकी कोशिश नहीं की ! प्यारी मातृभूमि के लिये—जिसके पवित्र दूधसे अद्यावधि परिपुष्ट बने रहे—अणुमात्र भी कार्य नहीं किया ! क्या बतायें ? पापी हैं और क्या ? न मालूम यमराज किस भांति दण्डित करेंगे ! शर्मके मारे आँखें बन्द हो जाती हैं। भला इससे भी बढ़कर अनर्थ होता है ? उस महाप्रभु के सामने—जिसके यहां से सत्कार्य करनेकी प्रतिज्ञा कर मृत्युलोकमें आये थे—सत्कार्य करनेको कौन पूछे—जीवनभरमें नाम-तक भी नहीं लिया ! उफ ! कैसा भीषण अन्धकारमय भविष्य है ?

नाथ ! हमारा अपराध अक्षम्य है। इसके लिये तुम जैसा भी भीषण दण्ड दोगे, हमारी आत्मा प्रसन्नता पूर्वक सहन करनेके लिये बाध्य होगी। यह निःसारमय जीवन सचमुच दण्डित होनेके योग्य है। पर क्या अब भविष्यके लिये भी कृपा न होगी नाथ ? क्यों नहीं ? तुम कृपालु हो, आश्रयदाता हो, सभीको आश्रय देते हो।

फिर हमें आश्रय क्यों नहीं मिलेगा प्रभु ? यदि हमारी बुद्धि ने पहले ही ईश्वर की सत्ता में निमग्न होनेकी प्रेरणा की होती तो आज दिलसे जली हुई आहें क्यों निकलती ? हाय ! हमारी मन्द-बुद्धिता, विषयलोलुपता और हमारी अदूरदर्शिता ने इस स्वर्णमय जीवन को पापमय बना डाला हा नाथ ... !!

क्या करें ? इच्छा करती है, मस्तिष्क को पहाड़ के ढोकों से चकनाचूर कर देने की। जा, ऐ शून्य हृदये ! इतना सामान रहते हुए भी तुमने विद्वानोंका सम्मान नहीं किया ! उल्टे में निरादर और अपमान ही किया ! ज्ञानी पुरुषों के पासतक आनेमें अपनी अवहेलना समझी ! देशकी बलि-वेदीपर हँसते हँसते न्यौछावर होजाने वालोंकी खिल्ली उड़ायी ! उन्हें बेवकूफ और विद्रोही की उपाधि दी ! अब न कहो, यही वस्त्राभूषित शरीर थोड़े ही घण्टोंके बाद किस सूरतमें परिणत हो जायगा ? अब वह पतित समाज कहां गया, जिसके चक्करमें पड़कर हमारी यह नारकीय यातना हुई है ? सत्यानाशी समाज ! और ऐ विषय-लोलुपता में लिप्त रहनेवाले लोगो ! अब हमें इस भयङ्कर मृत्युसे कौन बचायेगा ? तुमने तो हमें पतन के गहरे गर्त्तमें ढकेल, हमारे जीवन की इतिश्री कर दी। अब इस भयङ्कर पापसे विमुक्त करनेको कौन अग्रणी होगा ?

मृत्यु ! क्या थोड़े दिन के लिये और कृपा न करोगी ? देखो हमने जीवनभर पाप ही पाप किया है। उस प्रभु के पास ले चलनेके लिये कुछ भी सामग्री नहीं है। थोड़े दिन भी—वर्ष महीने नहीं तो दिनही सही—इस संसार में और रहने दो ! बस, पर्याप्त हो जायगा ! इतनेही में हमारी संतुष्टि हो जायगी ! पिता के चरणों में भेंट चढ़ाने के लिये कुछ न कुछ सामग्री अवश्य एकत्र हो जायगी !

पर नहीं, शायद तुम भी अपने सिद्धान्त की पक्की हो ! खुशामद और रिश्वत का तेरे यहां तनिक भी गुजारा नहीं है। जहां समय

आया, उसी समय—चाहे कोई किसी भी कार्यमें तन्मय क्यों न हो—अपना भयङ्कर काल-दण्ड चला ही देती हो ! फिर हमारे साथ कृपा क्यों करोगी ?

अच्छा, आओ ! सहर्ष आओ ! तैयार हैं ! बिलकुल तैयार हैं ! प्यारी मृत्यु ! तूने हमारे साथ बड़ा उपकार किया है। ओफ़ ! तूने हमारे जैसे पापीको भवसागरकी वेगवती-धारासे बचानेकी असीम कृपा की है। तुम शत्रु नहीं, मित्र हो। तुम्हारी सूरत भयङ्कर नहीं, आनन्ददायिनी है। तूने आकर हमारे अज्ञानान्धकार को मिटा दिया ! धन्य हो ! मृत्यु देवी धन्य हो ! तेरा आना हमारे लिये वैसा ही सुखकर है; जैसे प्यासे के लिये पीयूष, अन्धे के लिये लकड़ी और निर्धन के लिये हीरे की प्राप्ति।

एतदर्थ हे देवी ! हम तेरे लिये अत्यन्त व्याकुल हैं। आओ ! शीघ्र आओ ! हृदय में उद्विग्नता हो रही है ! उफ़ ! देरी क्यों करती हो देवी ! क्यों नहीं जल्द आकर हमें मालिकके चरण कमल का दर्शन कराती निष्ठुरे ? अभी नहीं आयेगी ?

कभी नहीं, कभी नहीं ! ऐसा सात जन्ममें नहीं हो सकता ! अब तुम्हारे धौंसमें किसी भी प्रकारसे आना सम्भव नहीं ! परमात्मा पर पूर्ण विश्वास रखनेवाले मनुष्यों का तू क्या कर सकती हो ? खबरदार ! भयङ्करता किसी औरको दिखाना, हम तुम्हारी सीमा को जानते हैं। तुम्हारा अधिकार ही क्या है ? दासी हो। दूसरे शब्दों में परमपिता के पास पहुंचानेके लिये वाहन हो। फिर डर क्यों ?

बस, काफी हो गया ! यह निर्विवाद है, कि जब प्रभु की आज्ञा होगी, तब तुम्हें शीघ्र ही ले चलनेके लिये आना ही होगा; फिर खुशामद किस बातकी ? आओ या न आओ, हमें इसकी परवाह नहीं है ! तुम्हारी खुशी !

बस, इतने ही में ? हवाई गायब हो गयी ? आ रही हो ? अच्छा

यही सही ! आओ ! स्वागतके लिये दिल खोलकर तैयार हैं ! वाह ! हँसती हुई आ रही हो ? नाज़-नख़रेके साथ ? रुन-झुन पैजनियोंके साथ ? इठलाती हुई आ रही हो ? तब क्या परीक्षा ले रही थीं ? शायद वही रंग था। यह क्या ? वाह ! वाह ! खूब ! खूब ! तूने तो हमारे दिलपर अच्छा आसन जमा लिया। जले हुए हृदयको सदाके लिये शीतल कर दिया ! बस, हम यही चाहते थे। प्यारी जान मृत्यु ! तूने हमारी मुराद पूरी कर दी। लो, तुमपर हम अपना जीवन न्योछावर करते हैं। आओ ! एकबार वैसी नाज़-नख़रेके साथ हमारे आलिङ्गन-पाशमें बँध जाओ !

विराट्‌के पथपर

[रचयिता—कविवर ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम']

अन्तस्तल में देव ! धधकी है सर्वनाश की भेरी,
भावुकता में उलझ रही है, विमुग्ध चेतना मेरी।
अन्तर्जग में अमर वेदना देती प्रतिक्षण फेरी,
स्वप्न-सरीखी खेल रही है, मिल प्रतिमा से तेरी !!
खोज रहा विस्मृत मग तेरा यह अबोध जीवन है !
कण कण में झुक निरख रहा वह तेरी छवि पावन है।

× × × ×

छिपता है सर्वस्व विश्व इन लघु आँखोंमें मेरी,
अमर-सृष्टि की रचना होती मादकता में तेरी !

मणिमाला।

प्रारब्धानुसार जबतक शरीर है तबतक रहना तो है; पर किसी कामनासे नहीं, किसी वासना से नहीं।

त्यागीके सम्बन्धमें कहा है कि वह स्त्री और पुरुषमें कोई भेद न समझे सबको समान जाने।

जिसे नग्न स्त्री, नग्न पुरुष और वृक्षादि भी एक ही परमात्मारूप दिखाई देते हैं उसे किसी प्रकारका भय नहीं है।

विद्वान् किसी पुस्तक रटनेवालेका नाम नहीं, बल्कि हृदयमें साक्षात्कार करनेवालेका नाम है।

गृहस्थीमें रहते हुए प्रारब्ध-कर्मसे आये हुए फलको भोगता हुआ जो निर्लिप्त रहता है उसे ही सद्गति मिलती है।

भगवान्‌के शरणागत होकर उसकी भक्ति करते हुए उसके शासनमें रहते हुए जो उसे अपना सारथी बनाता है, भगवान् उसे जरूर पार लगा देता है।

जब मनुष्य इन्द्रियोंके शिथिल हो जानेसे रुग्ण हो जाता है तो कहता है कि भविष्यमें ऐसा कोई कुकर्म नहीं करूँगा, जिससे इस दशाको फिर प्राप्त होना पड़े; पर ज्योंही वह भलाचङ्गा हो जाता है कि झटसे फिर उसी काममें लग जाता है जिससे कि उस दशाको प्राप्त हुआ था।

जब इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं, थक गयीं, मुरझा गयीं, तो फिर विषय शक्ति न भी रही तो क्या ? फिर वैराग्य पैदा हुआ तो क्या ?

इन्द्रियाँ रहें; पर हमारे अधीन होकर रहें न कि हमें अपने अधीन रखकर ।

संकट और चिन्तामें रहना ही मनका स्वभाव है।

जो सकाम कर्म करते हैं उन्हें स्वर्ग मिलता है तो जरूर; पर रहना वहाँ भी बन्धनमें ही पड़ता है; और जब सत्कर्म समाप्त हो जाते हैं तो फिर जन्म लेना पड़ता है। जैसे देवराज इन्द्रको भी एक बार सूहेतकका जन्म लेना पड़ा था।

हमारे भीतर काम, क्रोध और लोभादि जो शत्रु हैं वे बड़े प्रबल हैं। वे हमें मोक्षके दुर्गमें घुसने नहीं देते और सदा मोक्षमार्गसे रोकते ही रहते हैं।

अपनी मायाशक्तिको केवल भगवान ही घटा सकते हैं, मनुष्य नहीं। मनुष्यमें भला ऐसी शक्ति है ही कहाँ? परन्तु हाँ, जब नर नारायण को सारथी बना लेता है तो नरकी माया अपने आप छूट जाती है।

नरको नारायण बनना है। जबतक नर नारायण नहीं बनेगा और नर ही रहेगा, तबतक नरकमें ही पड़ा रहेगा।

कोई मरा हुआ प्राणी रोनेसे जीवित नहीं हो सकता और बीमार चिन्तासे अच्छा नहीं हो सकता, इसलिये किसीकी मृत्युपर रोना और बीमार की चिन्ता करना व्यर्थ है।

चिन्ता करनेसे विचारका नाश होता है और विचारका नाश होनेसे विकार उत्पन्न होता है, विकारसे अशान्ति और अशान्तिसे दुःख मिलता तथा कर्त्तव्य भी बिगड़ता है, इसलिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

जो कामान्ध होता है, वह पाप और पुण्यको जानते हुए भी मानता नहीं।

जिस प्रकार शरीर धीरे धीरे बढ़ता है, उसी प्रकार अभ्यास भी धीरे धीरे ही बढ़ता है।

जो ज्ञानी होते हैं, विचारवान होते हैं, वे किसीके लिये शोक नहीं करते।

अपने शरीरमें जो पीड़ा हो, उसे प्रारब्ध कर्मानुसार आयी जानकर शान्ति से सहन करनी चाहिये।

संसारमें नित्य ही कितने जीव मरते रहते हैं, पर हम सबके लिये तो रोते नहीं हैं। रोते तो केवल उसीके लिये हैं जिसके साथ हमारी कुछ ममता होती है और ममता मोहके कारण होती है, इसलिये सारे दुःखोंकी जड़ ममताको ही समझनी चाहिये।

जहाँ ममता नहीं है वहाँ दुःख नहीं है; और जहाँ ममता है वहाँ सुख नहीं है।

अगर हम अशान्ति नहीं चाहते तो ममताका त्याग करना ही होगा। उससे सम्बन्ध-विच्छेद करना ही होगा। —गीता

जिनमें कुटिलता नहीं है, जिनमें असत्य नहीं है और जिनमें माया नहीं है वे पुरुष अक्षय ब्रह्मधाम को प्राप्त होते हैं। —उपनिषद्

जो पुरुष मनरूपी तीर्थ के ज्ञानरूपी सरोवर में ईश्वर के ध्यानरूपी जल से स्नान करके रागद्वेषरूपी मल को धो डालता है, वह परमगति को प्राप्त होता है। —महाभारत

इन्द्रियों को रोकने, रागद्वेष का नाश करने और अहिंसाव्रत के पालन करने से मनुष्य मोक्षपद की प्राप्ति के योग्य होता है।

—मनुमहाराज

हे परमात्मन्! मुझे अपनी सारी उम्र तुझे अर्पण कर डालने दे। हे प्रेममय! मेरा अन्तःकरण निकाल ले और उसे सर्वात्मभाव के प्रेमामृत में डूब जाने दे! हे सर्वव्यापक भगवान्! मेरी आँखें निकाल ले और उन्हें तेरे दर्शन सुख का स्वाद लेकर पागल बना दे। हे सत्स्वरूप! मेरे हाथ की सारी शक्ति को अदैव तेरी प्रीति-सम्पादन का कार्य करते रहने दे। —रामतीर्थ

सच्चा दार्शनिक सदा संयम से रहता है और शारीरिक सुखों से दूर भागता है, वह कदापि अपने को विषय-सुखों में मग्न नहीं होने देता ।

—सुकरात

सदा प्रसन्न रहो । सब दुःखी जीवों को सुखी करने की चेष्टा करते रहोगे तो तुम्हारी प्रसन्नता सदा बनी रहेगी ।

—ईसा

हर्ष के साथ शोक और भय वैसे ही लगे रहते हैं, जैसे प्रकाश के साथ छाया रहती है । जिसके मन दोनों समान हैं वही सच्चा सुखी है ।

—[illegible]

सभी वैरियों के साथ भलाई और नम्रता का बर्ताव करने से सुख होता है परन्तु मन-वैरी के साथ नम्रता करने से दुःख उत्पन्न होता है । अतएव भयानक वैरी मन को मारो ।

—कबीर

अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी, शान्तिघन परमात्मा का ध्यान करो । जो उस आनन्द का जरासी भी झांकी देख पाते हैं उनकी दृष्टि में संसार के राजाओं का आनन्द तुच्छ हो जाता है ।

—भर्तृहरि

महापुरुष, उनका मत और उनका जीवन साधकों के लिए दर्पण है, पथप्रदर्शक है, मार्ग है और द्वार है जिससे वे नित्य-जीवन के क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं ।

—गोल्डिन्स

जाग्रत मन उसीको कहते हैं जिसमें ईश्वर को छोड़कर दूसरे किसी विषय की इच्छा या दूसरा कोई उद्देश्य न हो । जिसका मन परम प्रभु परमात्मा की सेवा में लगा रह सकता है उसके लिये दूसरे मित्र की जरूरत ही क्या है ।

—शिबली

विपत्तियों के समूह बाढ़ की लहरों के समान आया करते हैं, और पुरुष उनको चट्टान की तरह संभालता रहे तो वह धीरे धीरे आप ही चले जाते हैं ।

—मारकस आरिलियस

स्वामी माधवानन्द का कलकत्ते में स्वागत ।

कलकत्ता निवासियों की ओर से, स्वामी माधवानन्द का स्वागत करने के लिये एक विराट सभा गत २१ अक्टूबर को स्थानीय अलबर्ट हाल में कलकत्ता कारपोरेशन के मेयर श्रीयुक्त जे० एम० सेन गुप्त की अध्यक्षता में सानन्द सम्पन्न हुई । आरम्भ में स्वागत गान के बाद कुछ कविताओं का पाठ हुआ तदनन्तर दो अभिनन्दनपत्र दिये गये एक अङ्गरेजी में और दूसरा बङ्गाली में, उन अभिनन्दनों को सभापति महोदय ने चान्दी के कास्केट में रख कर स्वामीजी को भेंट किया ।

अभिनन्दनों का उत्तर देते हुये स्वामीजी ने कहा कि सुदूर पाश्चात्य देशों में जाकर मुझे इस बात का पर्य्याप्त परिचय मिल गया है कि श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव केवल भारतवर्ष के ही उद्धारक नहीं थे वरन उन्होंने समस्त संसार के कल्याण के लिये जो उपदेश दिये हैं, वे किसी पुस्तक वा किसी सिद्धान्त के द्वारा नहीं निर्मित हुये थे वरन वह उनकी अन्तरात्मा की वाणी थी ।

विश्वबन्धुत्व का उनका सुन्दर सन्देश भारतवर्ष में ही सीमित न रहकर सुदूर पाश्चात्य देशों में फैल गया है । अमेरिका में रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंटों का झगड़ा देखकर, स्वामीजी ने कहा—मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि परमहंसदेव के सिद्धान्तों के द्वारा भारतीय धार्मिक झगड़ों का ही अन्त नहीं होगा वरन वे समस्त संसार में चिर शान्ति स्थापन करने में भी पूर्ण रूप से समर्थ होंगे ।

आगे चलकर आपने कहा स्वामी विवेकानन्द के दो सन्देश थे—एक भारतवर्ष के लिये और दूसरा पाश्चात्य देशों के लिये । पाश्चात्य देशों के लोग धनधान्य से सम्पूर्ण थे किन्तु उन्हें शान्तिकी खोज थी । स्वामीजी ने पाश्चात्य देशों में जाकर उनकी पिपासा की तृप्ति के लिये आध्यात्मिकता का उपदेश दिया । भारतवर्ष में, जहां दरिद्रता

का साम्राज्य था, स्वामीजीने दूसरे ही प्रकार का उपदेश दिया। वह उपदेश—दरिद्रनारायण की सेवा थी।

इसके बाद आपने कहा कि पाश्चात्य देशों में जाकर मेरी यह पक्की धारणा हो गई है कि शिक्षा ही वह मूल मंत्र है, जिसके द्वारा मनुष्य की अन्तरात्मा का सतत विकाश होता रहता है। इसलिये किसी प्रकार की उन्नति के लिये यह परम आवश्यक है कि भारतवर्ष की जनता में शिक्षा का प्रचार पूर्ण रूप से हो, तभी भारतवासी अपने देशकी विशेषताओंको भली भांति समझ सकेंगे। इस समय परिस्थिति ने बहुत पलटा खाया है। अब यह आवश्यक हो गया है कि भारत और पाश्चात्य देशों में विचारों का आदान प्रदान होता रहे और यह तभी सम्भव होगा, जब समस्त भारतवासी शिक्षित हो जायं।

मिस मेयो के सम्बन्ध में बोलते हुए आपने कहा कि बुराइयोंमें भी भलाई का कुछ अंश अवश्य रहता है यदि और कुछ नहीं तो, मिस-मेयो के द्वारा भारतवर्ष के लोगों का विज्ञापन समस्त संसार के सामने हुआ। इस समय समस्त संसार भारतवर्ष की ओर सतृष्ण नेत्रों से देख रहा है इसलिये यह आवश्यक है कि भारतवासी अपने को ऐसा बनावें कि उनके सन्देश को सारा संसार मानने के लिये उत्सुक हो उठे। उन्हें आपस के साम्प्रदायिक भेद भाव को छोड़ कर संगठित रूप से इस प्रकार खड़ा होना चाहिये कि उनके विश्वबन्धुत्व की झंकार पुनः एक बार जोरों से गूँज उठे।

अन्तमें श्रीयुत जे० एम० सेनगुप्त ने कहा कि हमें स्वामीजी के उपदेशों को अक्षरशः पालन करना चाहिये तभी हमारे अन्दर से तपतिमिर का नाश होकर प्रोज्ज्वल प्रकाशपुञ्ज का प्रसार होगा।

श्रीरामकृष्ण तपोवन, धारचुला।

यह आश्रम आलमोड़े से करीब सत्तर माइल दूर हिमालय के एकान्त प्रदेश में है। कैलाश और मानसरोवर के यात्रियों को धारचुला होकर जाना पड़ता है। यहांके अधिवासी अशिक्षित—बिल्कुल जंगली से हैं। स्वामी अनुभवानन्द ने कैलाश जाते समय इस देश की परिस्थिति देखकर यहां एक आश्रम स्थापित करना निश्चित किया। भाग्यवश एक सहृदया भोटिया महिला ने वहां एक आश्रम बनवा दिया। सन् १९१४ से पीड़ितों की सेवा के लिये स्वामीजी ने वहां एक निःशुल्क औषधालय भी खोल रखा है। औषधालय में लोग दूर दूर से दवा लेने आते हैं। धीरे धीरे प्रचार बढ़ता जाता है और बीमारोंकी संख्या भी बढ़ती जाती है। अशिक्षित पहाड़ियों के लिये वहां एक प्रारम्भिक स्कूल भी है। गत चार साल में वहां ४५६० रोगियों की औषधि तथा अन्यान्य प्रयोजनीय द्रव्यों से सेवा की गयी। अलमोड़ा District Board तथा संयुक्त प्रदेश के Medical Board से सालाना ३६०) और ४००) की सहायता मिलती है।

दूर दूर से समागत रोगियोंकी चिकित्सा एक दिन में होनी असम्भव है। अगर उन लोगों को वहां रखकर सेवा की जाय तो उन्हें बड़ी सुविधा हो सकती है। इसलिये वहां एक मकान की बड़ी जरूरत है। साथही साथ कैलास तथा मानसरोवर के यात्रियों के लिये एक धर्मशाला तथा सेवकों के लिये एक मकान बनवाने की आवश्यकता है।

देशवासियों से स्वामी अनुभवानन्दजी की प्रार्थना है कि उपर्युक्त मकानों के लिये जो १००००) दश हजार रुपये खर्च पड़ेंगे, उसमें सहायता करें।

चंदा उन्हीं के पास, श्रीरामकृष्ण तपोवन, पोष्ट धारचुला जिला अलमोड़ा भेजने से सादर स्वीकृत होगा।

सर्वसाधारण के लिये शिक्षा-विस्तार

रामकृष्ण मिशनको अपील।

किसी जातिकी उन्नति के लिये शिक्षा एक मुख्य साधन है, यह बात सभी चिन्ताशील मनुष्यों को विदित है। पाश्चात्य देशोंकी वर्तमान विस्मयकर उन्नति का श्रेय उनके अपूर्व शिक्षा विस्तार ही को है और अमेरिका युक्तराज्य इन सबमें बढ़ा चढ़ा इसलिये हुआ है कि उसके प्रत्येक नरनारीके लिये शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है। हमारा देश सर्वथा इस के विपरीत है। इस के फलस्वरूप देखिये हमारे निम्न-श्रेणीवाले कैसी गहरी दुर्गति को प्राप्त हुए हैं। वे सदा दरिद्र हैं, क्योंकि उनको खबर ही नहीं कि किस तरह अपनी सांसारिक दशा को सुधार लें। वे जन्म से ही बीमार रहकर अकाल-मृत्यु के शिकार बनते हैं, कारण कि उनको पर्याप्त भोजन और कपड़े मिलते नहीं, और स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों से बिल्कुल कोरे हैं। वे कुसंस्कारोंके दास हैं और जल्दी धूर्तों के पंजेमें पड़ जाते हैं। किससे अपनी भलाई होगी और किससे सत्यानाश, इसका उनको पता नहीं। इनकी स्त्रियोंकी दशा तो और भी शोचनीय है। वे तो दीनता की मूर्ति हैं और भारतवर्षमें शिशुओंकी मृत्यु कितनी अधिक होती है, यह सबको मालूम है। सारांश यह कि यहाँ के निम्न श्रेणीवालों की दुर्दशा अमानुषिक है, उसे देख कलेजा पिघल जाता है और किसी भी सभ्य समाज का मुंह काला कर देता है।

इस दशा का तुरन्त प्रतिकार करना होगा। भारतके निम्न श्रेणी वाले भी मनुष्य हैं, और इसीलिये हम सबको चाहिये कि हम उनको अपने पैरोंपर खड़े होनेमें मदद दें। हमारा धर्म शिक्षा देता है कि ईश्वर सब प्राणियोंमें विराजमान है। यदि हम इन करोड़ों दुःखी भाषा-हीन नरनारियों की सहायता करें तो क्या वह अच्छी से अच्छी पूजा

न होगी? वे तो अपने ही स्वदेशवासी हैं—अपने भाई और बहनें हैं। उनकी सेवा तो जीते-जागते ईश्वर की आराधना होगी। प्रातः-स्मरणीय स्वामी विवेकानन्द जी महाराज ने बार बार अपनी ज्वलन्त भाषा में देश भर शिक्षा का विस्तार करने को कहा है। उनकी रायमें इससे देश की सारी समस्याएं हल हो जायँगी। जनता को यह जानकर सन्तोष होगा कि अपने और और कामों के साथ हम कोई ६५ विद्यालय खोल सके हैं, जिनमें अधिकांश तो प्राथमिक शिक्षा के लिये हैं और कुछ शिल्प-शिक्षा भी देते हैं। अब हम, और कामों के बीच कम से कम एक सौ और पाठशालाएं खोलना चाहते हैं, देर है केवल काफी रुपये मिलने की। शिक्षा की मजबूत नींवपर ही जाति की उन्नति निर्भर रहती है। हम भारत के करोड़ों गरीब और अनपढ़ नर नारियों की सेवा के लिये सहृदय देशवासियोंसे सहायताकी प्रार्थना करते हैं। हमें दृढ़ विश्वास है कि वे तुरन्त इसमें अपनी उदारता का उत्कृष्ट परिचय प्रदान करेंगे। सहायता नीचे लिखे पतों पर भेजे जाने से सधन्यवाद स्वीकृत होगी:—

(१) प्रेसिडेण्ट, रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, जि० हवड़ा।

(२) व्यवस्थापक, अद्वैत आश्रम, १८२—ए, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

(स्वा०) शुद्धानन्द

मन्त्री, रामकृष्ण मिशन।

मायावती दातव्य औषधालय।

सन् १९२८ की वार्षिक रिपोर्ट।

हमे सर्वसाधारण के सम्मुख १९२८ का कार्य विवरण रखते हुए, अपार आनन्द प्राप्त होता है। यह औषधालय अद्वैत आश्रम के भवन में आश्रम के ही एक संन्यासी के निरीक्षण में गत कई वर्षों से बड़े सुचारु रूप से चल रहा है। कार्याध्यक्ष महोदय औषधि विज्ञान की

काफी जानकारी रखते हैं, इसलिये इस कार्य के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। यह औषधालय कितना उपयोगी सिद्ध हुआ है, यह कहने की बात नहीं है। इस औषधालय में न केवल रोगियों को औषधियां दी जाती है, वरन वे बिना पैसे खर्च किये उपयुक्त पथ्य भी पाते हैं। हम उन धनीमानी उदार हृदय दाताओं को धन्यवाद देते हैं जिनकी आर्थिक सहायता के कारण ही औषधालय का कार्य इतने दिनों तक सुचारु रूप से चला और भविष्य उसको और भी उन्नत होने की सम्भावना है।

इस वर्ष औषधि लेनेवाले रोगियों की संख्या ३८८९ रही है जिसमें ३०२२ नये रोगी थे और ८६७ ऐसे रोगी थे जिनकी चिकित्सा पहले से ही होती थी। नये आये हुये रोगियों में १५७३ पुरुष थे ७११ स्त्रियां थीं और ७३८ बच्चे थे। उनमें से ५५३ हिन्दूधर्म के अनुयायी नहीं थे वे किसी अन्य धर्म को मानने वाले थे। अस्पताल में भर्ती किये हुये रोगियों की संख्या १८३ थी और यह संख्या गत वर्ष से कहीं अधिक थी। इन रोगियों में से १३५ आराम करके छोड़ दिये गये, कईने रोगग्रस्त रहते हुये ही अस्पताल छोड़ दिया और एक मर गया। चार रोगियों की दवा तो इस वर्ष के अन्तिम दिनों तक होती रही। भर्ती किये हुये रोगियों में २० हिन्दू धर्म के अनुयायी नहीं थे वे किसी और धर्म के अनुयायी थे।

बीमारियों का विवरण

अम्ल	...	...	...	६१
ज्वर	...	...	...	६१५
मलेरिया बुखार	...	...	...	६६
गंठिया	...	...	...	६७
कमजोरी	...	...	...	१८३
सिर दर्द	...	...	...	१६७

आंख की बीमारी		...	...	७४३
कान की बीमारी		...	...	४०
लकवा	...	...	...	३
इनफ्लुएञ्जा बुखार		...	...	१०
गले का सूजन		...	...	७
शीतांग	...	...	...	८०
दमा	...	...	...	९०
खांसी	...	...	...	३
सूखी खांसी	...	..	...	३
शूल	...	...	...	७
बवासीर	...	...	...	३
बरवट	...	...	...	११
जलोदर	...	...	...	३
चर्मरोग	...	...	...	६९
नासूर Ulcer	...	...	...	५
जलन	...	...	...	३
चोट खायेहुये	...	...	...	८१
पुरुष सम्बन्धी बीमारी		...	...	१००
स्त्री सम्यन्धी बीमारी		...	...	२२
दाद, खजुली	...	...	...	१८४
गठिया	...	...	...	३०
वात रोग	...	...	...	१०
दांत का दर्द	...	...	...	७
चीर, फाड़	...	....	...	१३
नाकड़ी बीमारी	...	...	...	३
यक्ष्मा	...	...	...	१३
कोढ़	...	...	...	३
कब्ज	...	...	...	१२०
फोड़ा	...	...	...	१०
दर्द	...	...	...	६०
सूजन	...	..	...	५

संग्रहणी	...	...	...	२४०

कुल जोड़—३२०५

१९२८ से आय व्यय का विवरण

आय		रु०	आ०	पा०
गत वर्ष की बचत	...	२५३०	१५	४
एक कालीन सहायता	...	६४५	८	०
सूद	...	१०८	०	०
कुल जोड़		३२८४	७	४

व्यय		रु०	आ०	पा०
दवा	...	३२७	७	०
कार्यकर्ताओं का भोजनादि		३६०	०	०
औजार आदि	...	११४	१३	०
कुली भाड़ा	...	६	१२	६
कुल जोड़		८०९	०	६
बचत		२४७५	६	१०

रोगियों की संख्या, जिन्हें अस्पताल में रखकर चिकित्सा करने की आवश्यकता पड़ती है निरन्तर बढ़ रही है। इस समय चिकित्सालय में जो स्थान है वह कदापि उनके लिये पर्याप्त नहीं है। इस समय चार ही रोगियों को रखने का प्रबन्ध है, इसलिये कम से कम चार और रोगियों के रखने का प्रबन्ध कर देना नितान्त अवश्यक है। इस प्रबन्ध में साधारणतः पांच हजार रुपये अवश्य लगेंगे।

ऐसे निर्जन स्थान में इस चिकित्सालय की कितनी उपयोगिता है इस बात को समझते हुए, हमें आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास है कि दयालु सहृदय आर्थिक सहायता के लिये इस काम को कदापि अधूरा न रहने देंगे।

सहायता की रकम चाहे कितनी ही कम क्यों न हो निम्न लिखित पतेपर सधन्यवाद स्वीकृत होगी—

स्वामी वीरेश्वरानन्द
अध्यक्ष अद्वैत आश्रम
पोष्ट मायावती, जिला अल्मोड़ा, संयुक्त प्रान्त

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ —गीता।

वर्ष ८] सौर कार्तिक, सम्वत् १९८६ [अङ्क ६

श्रीरामकृष्णवचनामृत।

इक्कीसवां परिच्छेद।

(१)

श्रीरामकृष्ण बलराम के दुतल्ले के बैठकखाने में भक्तों के बीच में प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुए उन से वार्तालाप कर रहे हैं। नरेन्द्र, मास्टर, भवनाथ, पूर्ण, पल्टू, छोटे नरेन, गिरीश, रामबाबू, द्विज, विनोद आदि बहुत से भक्त चारों ओर से घेरकर बैठे हुए हैं।

आज शनिवार है। दिन के तीन बजे होंगे। बैशाख की कृष्णा दशमी है। ९ मई, १८८५।

बलराम घरमें नहीं हैं। शरीर अस्वस्थ होनेके कारण वायुपरिवर्तनके लिये मुंगेर गये हुए हैं। उनकी बड़ी कन्याने श्रीरामकृष्ण और भक्तोंको बुलाकर महोत्सव किया है। भोजन के पश्चात श्रीरामकृष्ण जरा विश्राम कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण मास्टर से बार बार पूछ रहे हैं, 'बताओ तो सही, क्या मैं उदार हूं ?' भवनाथ ने हंसकर कहा, ये और क्या कहेंगे, चुप रहने के सिवा ?

एक हिन्दोस्तानी भिक्षुक गाने के लिये आया। भक्तों ने दो